||२१७||

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

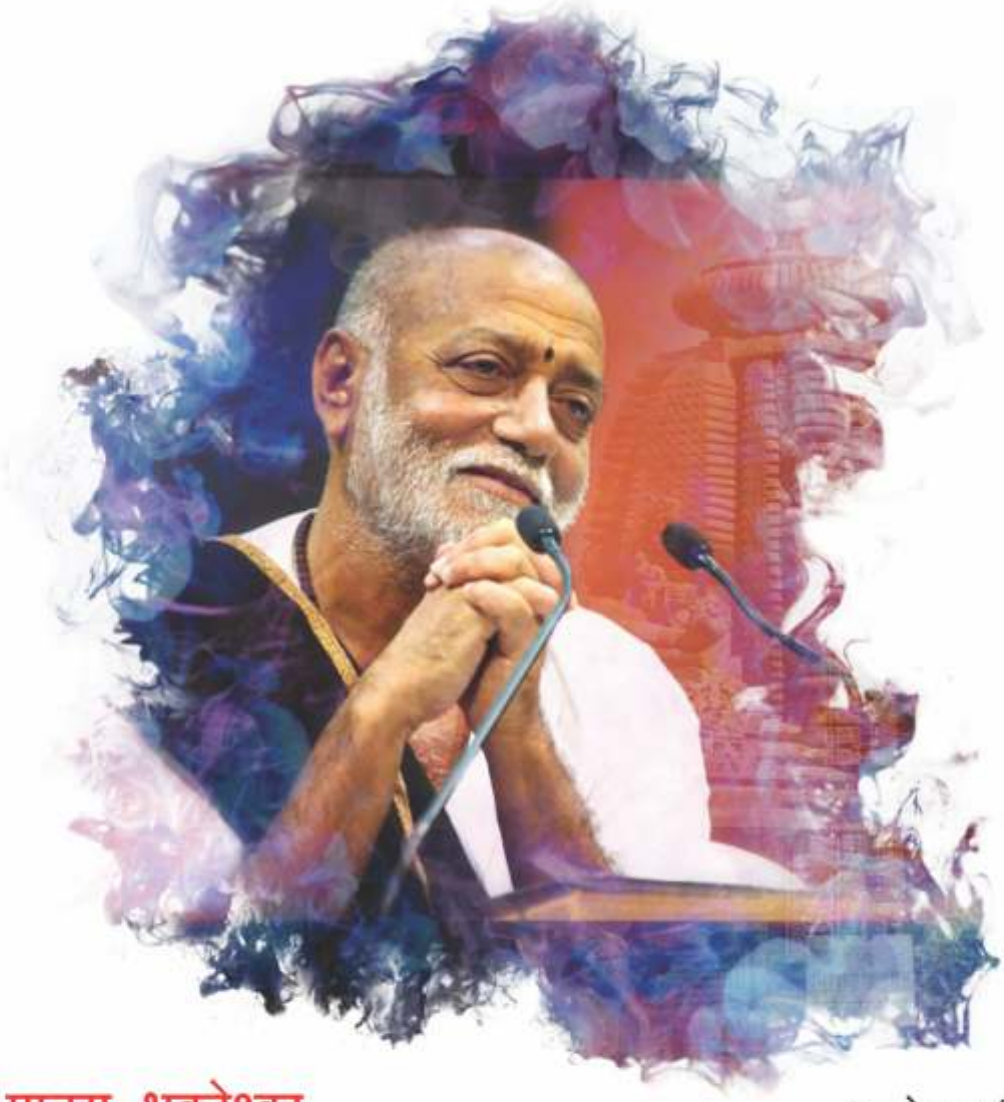

मानस–भुवनेश्वर

भुवनेश्वर (उडीसा)

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥

|| रामकथा ||
मानस-भुवनेश्वर

मोरारिबापू
भुवनेश्वर (उडीसा)
दिनांक : ९-४-२०१६ से १७-४-२०१६
कथा-क्रमांक : ७९२

प्रकाशन :
सितम्बर, २०१७

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने भुवनेश्वर (उडीसा) में भगवान लिंगराज महादेव की पवित्र भूमि पर दिनांक ९-४-२०१६ से १७-४-२०१६ के चैत्र नवरात्रि के पावन दिनों में 'मानस-भुवनेश्वर' रामकथा का गान किया।

'सुन्दरकांड' में राम के बारे में विभीषण अपना दर्शन प्रस्तुत करते हुए 'भुवनेश्वर' शब्द का प्रयोग करता है और 'लंकाकांड' अंतर्गत भगवान राम लक्ष्मण की पृच्छा करते हैं तब 'भुवनेश्वर' शब्दप्रयोग हुआ है उसका जिक्र करते हुए बापू ने कहा कि 'रामचरित मानस' में भगवान राम को भुवनेश्वर कहा है। राम है भुवनेश्वर। वो केवल दशरथ के भवन का ही निवासी नहीं है; तत्त्वत: वो भुवनेश्वर है। हमारे लिए सीमित बनकर खेल रहा है लेकिन तत्त्वत: ये ब्रह्म है, ये व्यापक भुवनेश्वर है।

जो एक है, जो सर्वभूत में निवास करता है, जो व्यापक है, जो अजित है, जो आंतर-बाह्य ऐश्वर्य से परिपूर्ण है, जो काल का भी काल है वो ईश्वर है, भुवनेश्वर है; ऐसे तुलसीकथित भुवनेश्वर के लक्षणों को बापू ने उद्घाटित किये। साथ ही बापू ने इन शब्दों में भुवनेश्वर के नाम का महिमागान भी किया, 'मुक्त होना है तो भुवनेश्वर का नाम लो। शाश्वती प्राप्त करनी है तो भुवनेश्वर का नाम लो। ब्रह्मसुख पाना है तो भुवनेश्वर का नाम लो। भगवान को प्रिय होना है तो भुवनेश्वर का नाम लो। भक्ति में उच्चपद पाना है? शिरोमणि होना है? भुवनेश्वर का नाम लो। अचल होना है? भुवनेश्वर का नाम लो। श्री हरि को वश करना है? भुवनेश्वर का नाम लो।'

बापू ने अपने सद्गुरु भगवान त्रिभुवनदासदादा को 'भुवनेश्वर' का दर्जा देते हुए पूरी श्रद्धा के साथ कहा कि मैंने तो तलगाजरडा के एक मिट्टी के कोने में भुवनेश्वर को देखा था, जो दस्तार बांधे हुए थे, जो पघडी बांधे हुए थे। मेरे भुवनेश्वर वहां कोने में बैठे थे। मेरा इश्वर, मेरा सद्गुरु जो कहो। मैं व्यक्तिगतरूप में कहूं तो मेरा भुवनेश्वर तो वहां है।

'सर्वसार उपनिषद' और 'मानस' के संदर्भ में बापू ने इस तरह भी ईश्वर-भुवनेश्वर को व्याख्यायित किया कि सत्य है भुवनेश्वर; ज्ञान है भुवनेश्वर; अनंत है भुवनेश्वर; आनंद है भुवनेश्वर। कोई व्यक्ति को कायम आनंद में दिखे तो उनके पास बैठना; समझना कि हम भुवनेश्वर के पास बैठे हैं।

'मानस-भुवनेश्वर' विषय पर केन्द्रित हुई इस रामकथा में श्रोताओं को यूं ईश्वर-भुवनेश्वर का दार्शनिक पीठिका से परिचय हुआ।

– नीतिन वडगामा

राम तत्त्वतः ब्रह्म है, वह व्यापक भुवनेश्वर है

मानस-भुवनेश्वर
: १ :

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ।।
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ।।

बाप! नव वर्ष का आरंभ हो चुका है। उसमें भी चैत्र नवरात्रि के ये पावन दिन, और भगवान जगन्नाथ जहां बिराजमान है वो पावनपुरी और उडीसा की अनेक चेतनाओं से सभर भूमि पर भुवनेश्वर में, भगवान लिंगराज महादेव की ये भूमि पर, यहां की समस्त चेतनाओं को प्रणाम करके हम रामकथा का आरंभ करने जा रहे हैं। आप सभी का स्वागत है। और इस नवदिवसीय रामकथा के लिए निमित्तमात्र यजमान परिवार हमारे अरुणभाई और उसका परिवार और आप सभी मेरे भाई-बहन को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। नई साल की बहुत-बहुत बधाई।

चैत्र नवरात्रि ये 'रामचरित मानस' की उपासना करने के विशिष्ट दिन। ऐसे पावन समय में ये कथा का आयोजन यहां हुआ भगवद्कृपा से। अगर चैत्र नवरात्रि में रामकथा होती है तो केन्द्र में रामजन्म की ही कथा रखी जाती है करीब-करीब। कभी 'मानस-नवमी', कभी 'मानस-मधुमास', कुछ-कुछ। लेकिन 'भुवनेश्वर' नाम बड़ा प्यारा है। 'रामचरित मानस' में गोस्वामीजी ने भुवनेश्वर नाम का बहुत पुण्य स्मरण किया है। इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न इस कथा का नाम 'मानस-भुवनेश्वर' रखा जाय? तो इस नवदिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु होगा 'मानस-भुवनेश्वर।'

भुवनेश्वर यानी भगवान राम। भुवनेश्वर मीन्स परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, भगवान, आप जो कहो; एक सर्वोच्च सत्ता वो है भगवान राम। जिसको हम परमात्मा कहे, जो भी कहो। तो दो पंक्तियां मैंने इस कथा के लिए उठाई है। एक पंक्ति तो 'सुन्दरकांड' से ली है। और दूसरी पंक्ति 'लंकाकांड' से उठाई गई है। सामान्य भूमिका समझ लीजिए। आज तो कथा के माहात्म्य का दिन है। कल से विधिवत् हम आगे बढ़ेंगे; उसका सात्त्विक-तात्त्विक विचार करेंगे।

श्री हनुमानजी लंका पर अपना प्रभाव डालकर लौट आते हैं माँ की शोध लेकर और भगवान राम और भगवान के समाज को लेकर फ़िर सब समुद्र के तट पर आ पहुंच जाते हैं। तपस्वी की सेना समंदर के तट पर आ पहुंची है, ऐसी ख़बर गुप्तचर

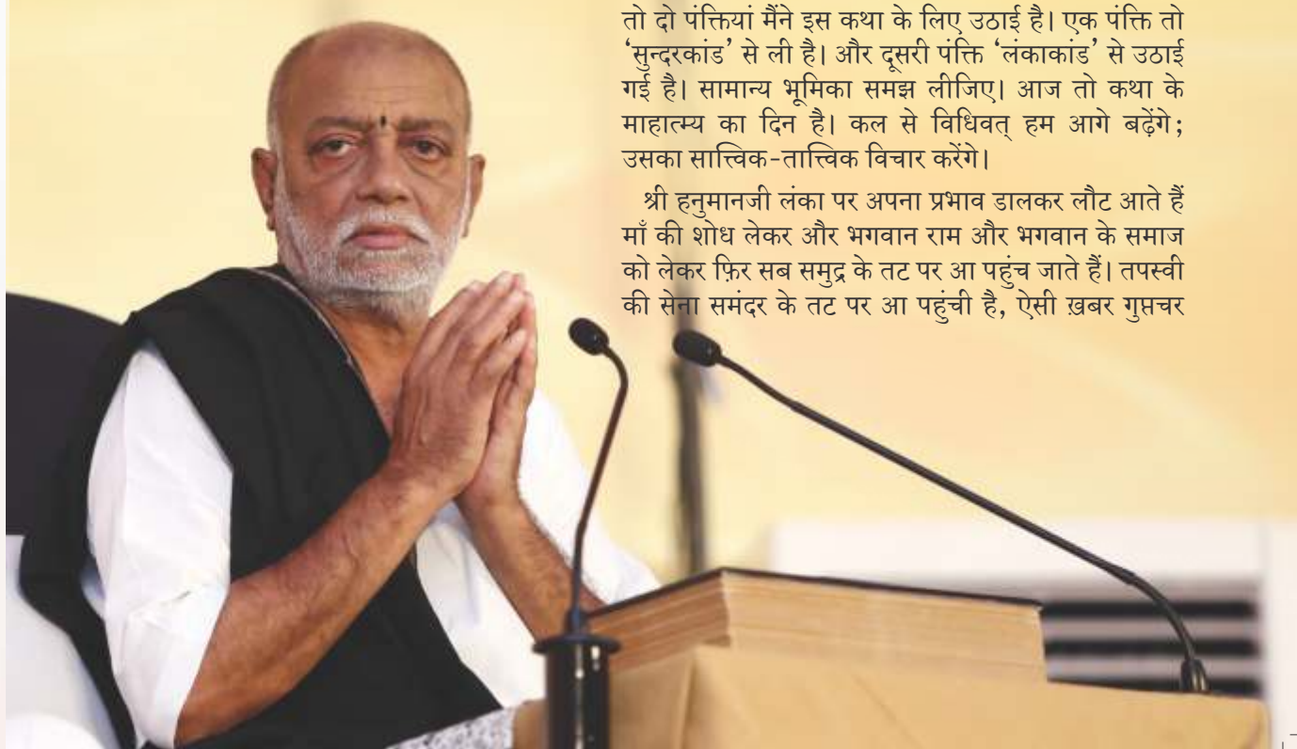

विभाग के द्वारा रावण को प्राप्त होती है। फ़िर रावण एक आपातकालीन बैठक बुलाता है कि अब क्या किया जाय? सब मंत्रीओं ने खुशामत की। उसी समय विभीषण प्रवेश करता है सभा में। और विभीषण की राय ली गई तब विभीषण भगवान राम के बारे में अपना जो दर्शन प्रस्तुत करता है उसी में वो 'भुवनेश्वर' शब्द का प्रयोग करता है। विभीषण रावण से कहता है कि हे तात, हे मेरे पिता समान ज्येष्ठ बंधु! राम केवल नरभूपाल नहीं है; ये मनुष्य का राजामात्र नहीं है; मृत्युलोक का राजा भी नहीं है। लेकिन तत्त्वत: राम भुवनेश्वर है। और रावण, ये भी समझ कि ये भगवान राम जो भुवनेश्वर है वो काल के भी काल है। फ़िर आगे तो विभीषण राम का पूरा औपनिषदीय रूप प्रस्तुत करता है। ये व्यापक है, ये अजित है आदि-आदि। रावण को जाग्रत करने के लिए बड़ी हृदय की भाषा से विभीषण रावण को कह रहा है-

तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेस्वर कालहु कर काला ।।

फ़िर 'लंकाकांड' में लक्ष्मणजी रणमैदान में है। और घमासाण युद्ध चल रहा था। और सब सेनाएं अपनी-अपनी शिबिरों में लौट रही थी। संध्या हो चुकी थी तब भी लक्ष्मण राम के पास लौटे नहीं तब भगवान पृच्छा करते हैं कि लक्ष्मण कहां है? अभी तक लक्ष्मण क्यों नहीं लौटा? लेकिन कैसे राम ने पूछा?-

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर ।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ।।

करुणा की खदान कृपानिधान परमात्मा ने जो व्यापक है, जो ब्रह्म है, जो अजित है और जो भुवनेश्वर है, ऐसे राम ने अपने सखाओं को पूछा कि लछिमन कहां है? तो वहां तुलसी ने 'रामचरित मानस' में भगवान राम को भुवनेश्वर कहा है।

तो मेरे भाई-बहन, राम है भुवनेश्वर। वो केवल दशरथ के भवन का ही निवासी नहीं है; तत्त्वत: वो भुवनेश्वर है। हमारे लिए सीमित बनकर खेल रहा है लेकिन तत्त्वत: ये ब्रह्म है, ये व्यापक भुवनेश्वर है। इन पावन दिनों में हम एक ओर नया अनुष्ठान करने जा रहे हैं नव दिन का। उसकी खुशी भी है। 'मानस' में चौदह भुवन का उल्लेख बार-बार है; चौदह लोक के बारे में कहा गया है। आये दिन उसकी चर्चा करेंगे। ये कौन-कौन लोक है? ये ईश्वर-भगवान राम है यानी इससे आगे अब कुछ नहीं है। तो एक प्यारा विषय व्यासपीठ को प्राप्त हो रहा है गुरुकृपा से उसका मैं आपके साथ संवाद के रूप में-वार्तालाप के रूप में नव दिन संवाद करूंगा।

रामकथा स्वयं एक महामंत्र है। आप रामकथा का पारायण करते हैं, पाठ करते हैं तो आप केवल पाठ और स्वाध्याय ही नहीं कर रहे हैं। मेरी समझ में एक अद्वितीय, एक अलौकिक ऐसे महामंत्र का जप करते हैं। तुलसीदासजी ने स्वयं कहा है-

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के ।
मेटत कठिन कुअंक भाल के ।।

मणि का ये पहला लक्षण है विष को खींच लेना। तो तुलसी कहते हैं, पूरा 'रामचरित मानस' एक ऐसा मंत्र है कि विषय व्याल जो हमें निरंतर काटते हैं उसके विष को रामकथा चुस लेती है, कम कर देती है; पतन तक नहीं जाने देती; आदमी को फ़िर सचेत कर देती है, विवेकी बना देती है। तो ये महामंत्र है पूरा। और इतना सरल भी कोई मंत्र नहीं है। मैं 'मानस' गाता हूं, 'मानस' मेरा जीवन है। ये चैत्र के दिन है इसीलिए 'मानस' पर ज्यादा बोलने पर जी करता है इसीलिए नहीं साहब! आप अनुभव करे! विषयों की मात्रा कम होती है 'रामचरित मानस' के महामंत्र का आश्रय करने से। सम्यक् कर देती है। दूसरा, ये मंत्र क्या काम करता है? ये मंत्र महामणि जो है। दूसरा काम करता है, प्रकाश देता है। दीपक के लिए बाती चाहिए, घी चाहिए, सुरक्षा के लिए चीमनी चाहिए। मणि स्वयं प्रकाशित है। तो ये महामंत्र एक ऐसा मणि है कि स्वयं प्रकाश देता है निरंतर और इस प्रकाश में कभी कमी नहीं आती है।

तुलसीदासजी के जीवन में बहुत-सी कथाएं मिलती है; इनमें निरालाजी ने अपने ढ़ंग से एक कथा पेश की थी। आपने कहा कि गोस्वामीजी अपना हस्तलिखित 'रामचरित मानस' ग्रंथ लेकर चित्रकूट के घनघोर जंगल में घूम रहे थे। घना अंधेरा, घना जंगल था। और तुलसी का नियम था कि समयसर 'रामचरित मानस' का पारायण करते रहते थे। और चित्रकूट के इस जंगल में घूमते-घूमते जब 'रामचरित मानस' का पारायण करने का समय हुआ है और गोस्वामीजी ने सोचा कि इतना अंधेरा है, मैं कैसे पाठ कर पाउंगा? कोई चौपाईयां, इस मंत्र के शब्दब्रह्म मैं देख नहीं पाता हूं! तब एक मिनट के लिए उसने आंखें बंद करके केवल 'रामायण' का ही ध्यान किया कि शंकर भगवान ने मेरे

थ्रू लिखवाया है कि ये मणि है, तो मणि का तो अपना प्रकाश होना चाहिए। निरालाजी का मानना है कि उसी समय 'रामचरित मानस' ग्रंथ से प्रकाश प्रगट हुआ है। तुलसी की अपनी निजी अनुभूति है। हमारे दिल में ये बात न भी बैठे। लेकिन निराला जैसा एक महाकवि ये बात कह रहा है तो कुछ होना चाहिए उसमें।

ग्रंथ का एक प्रकाश होता है। ग्रंथ का एक उजाला होता है, ये निश्चित है। तो मणि का दूसरा लक्षण है प्रकाश देना। तीसरा, कोई उसको चोरी नहीं कर पाते हैं क्योंकि इतना स्वयं प्रकाश है उसका कि कोई भी चुराकर ले जाये तो वहां प्रकाश होने लगेगा! रंगे हाथ कोई पकड़ा जायेगा! उसको कोई चोरी नहीं पाते हैं ये तीसरा लक्षण है मणि का। और इस महामंत्र रूप मणि का चौथा लक्षण है, इस महामणि से कठिन से कठिन हमारे और आपके भाग्य के जो अंक होते हैं, लेख होते हैं वो मिट जाते हैं। मेरे भाई-बहन, सब वस्तु बुद्धि से समझ में नहीं आती; कुछ श्रद्धा से समझनी पड़ती है, परम भरोसे से समझनी पड़ती है। आप की श्रद्धा आप जाने। मेरी श्रद्धा, मेरा भरोसा, मेरा श्वास, मेरा विश्वास, मेरी आत्मा, मेरा खाना-पीना-सोना-जागना सब कुछ 'रामचरित मानस' है। इसके अतिरिक्त किसीके आश्रय में मैं नहीं हूं। तो मेरे अनुभव में तो मैं कह सकता हूं कि ये एक ऐसा महामंत्र है कि कठिन से कठिन कुअंक को मिटा देता है। नि:शंक मिटा देता है। लेकिन चाहिए इतना प्रबल भरोसा।

हमारे कल-परसों ही जूनागढ़वाले वनराजबापू आये थे वो कहते थे कि बापू, दस-दस फूट के दस खुदाई करे तो जो श्रम हुआ है, खुदाई हुई है वो तो सौ फूट ही हुई है। लेकिन पानी नहीं निकलता। संभव था पानी निकलता यदि एक ही जगह सौ फूट की खुदाई की होती। ये आलोचना नहीं है, ये निंदा भी नहीं है। हमारी सब की ये स्थिति है! शोभितभाई ने मुझे दो दिन पहले बताया, मुझे बहुत अच्छा लगा। ओशो एक बार ट्रेइन में मुसाफ़री कर रहे थे। अकेले थे। तो एक भिखारी आया। उसने ओशो से एक रूपया मांगा। ओशो ने एक रूपया दे दिया। भिखारी ने ले लिया। दूसरे डिब्बे में गया वो भिखारी। पांच-दस मिनट बाद वो भिखारी कुछ कपड़े बदलकर फ़िर ओशोवाले डिब्बे में आया। भिक्षा मांगी। ओशो ने फ़िर एक रूपया दिया। फ़िर दस मिनट के बाद कुछ टोपी लगाकर, हाथ में भिक्षापात्र लेकर तिसरी बार आया। ओशो ने सौ रूपया दिया। फ़िर वो गया। चौथी बार आया। फ़िर सौ रूपया मांगा। ओशो ने सौ रूपया दिया। ये भिक्षुक फ़िर पांचवीं बार आया कुछ पलटकर। ओशो ने सौ रूपया दे दिया। तब वो भिखारी बोला कि मैं वो ही का वो ही हूं। आप मुझे पहचान नहीं पाये? ओशो ने कहा, मैं भी वो ही का वो ही हूं। तू मुझे पहचान नहीं पाया? परम तत्त्व जो है वो वही का वही है। हम उसको पहचान नहीं पा रहे हैं! इसीलिए हमारा भटकाव शुरू हो जाता है! और मुझे इसका एक अर्थ तो ये भी लगता है कि ये भिखारी भी बार-बार ओशो के पास ही गया तो काम तो हुआ! कई हमसफर रहे होंगे। तो रामकथा के महामंत्र से कठिन से कठिन कुअंक मिट जाते हैं।

मेरे भाई-बहन, ये मणि-महामंत्र प्रकाश देता है, जागरण देता है। प्रकाश का अर्थ ज्ञान भी है। ये ज्ञान देता है। ये महामंत्र हमारी विषय की प्रबलता को सम्यक् करता है। जीवन में क्रमश: प्रकाश की वृद्धि करता है। और कोई चोरी नहीं कर पाता। कोई उस पर अधिकार नहीं जमा सकता। और ये मंत्र महामणि हमारी कठिन से कठिन भाग्यरेखा को पलट सकता है। ये सत्य है। ये साधुओं का अनुभव है। ऐसी रामकथा जो महामंत्र है। रामकथा अमृत है। रामकथा कल्पतरु है। रामकथा कामदुर्गा गाय है। क्या नहीं है रामकथा? जिसको गुरुकृपा से उसका मूल्य समझ में आ गया वो दीवाने हो चुके है इसके! मूल्य न समझ में आये तो बात और है!

तो मेरे भाई-बहन, आप कुछ न करो तो भी कोई चिंता नहीं, कोई गिला नहीं है। लेकिन एक बिनती चोक्कस करूं। ये बहुत करुणा से भरी हुई रामकथा है; चिंता मत करना लेकिन एक ईन्सान के नाते इतना तो कहूंगा कि आप 'मानस' के बारे में कुछ न करो तो कोई चिंता नहीं। लेकिन कृपया रामकथा की निंदा न करना; इसकी आलोचना मत करना! कृपया बचिये इन अपराधों से। यद्यपि कथा करुणा है, माँ है; कृपा करती है, लेकिन अस्तित्व क्षमा नहीं करेगा। इसीलिए सावधान! न रास आये तो कोई बात नहीं! कथा नहीं सुननी। नहीं पाठ करना। छोड़ो! आलोचना में मत जाओ।

तो मेरे भाई-बहन, ये मंत्र महामणि है। इसका पारायण और उसकी साधना करने के मंगलमय दिन है। आप से हो सके तो करियेगा। न हो सके तो भी कोई चिंता नहीं। आपने इतना प्यार से सुना ये भी बहुत-बहुत

उपकारक घटना है। मैं राज़ी हूं। 'रामचरित मानस' यानी 'रामायण', सात भाग में उसको संग्रहित किया है। जिसको हम 'कांड' कहते हैं, तुलसीदासजी 'सोपान' कहते हैं। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', किष्किन्धाकांड', सुन्दरकांड', 'लंकाकांड', 'उत्तरकांड।' जीवन की एक सीढ़ी है ये अवश्य।

पहला सोपान 'बालकांड' है। उसका आरंभ करते हैं तो गोस्वामीजी संस्कृत में सात मंत्र लिखते हैं। जिसको हमारी सनातनी परंपरा मंगलाचरण कहती है। आप जानते हैं, तुलसी ने तो बिलकुल देहाती भाषा में ग्राम्य गिरा में शास्त्र उतारा है। लेकिन प्रारंभ में आप ने संस्कृत मंत्रों में मंगलाचरण किया है। एक-दो मंत्रों का हम स्मरण करें-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

गणेश की, सरस्वतीजी की, भगवान शिव और पार्वती की, त्रिभुवन के गुरु समझकर भगवान महादेव की, वाल्मीकि की, श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। जानकीजी की वंदना की, रामचंद्र की वंदना की और आख़िर में-

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।

स्वान्तःसुख के लिए तुलसीदासजी ने इस शास्त्र की, परम पावन सद्ग्रंथ की रचना की। यानी संस्कृत मंगलाचरण कराते हमारी परम पावनी परंपरा का सद्भाव से निर्वहण किया। अब ये श्लोक लोक तक पहुंचे, सामान्य आदमी इस रामतत्त्व को समझ सके इसीलिए उनकी भाषा में कथा को उतारने का शिवसंकल्प तुलसी ने किया। जैसे कबीर भी ऐसी बोली में बोले, बुद्ध भी ऐसी बोली में बोले, भगवान महावीर सब देहाती बोली में बोले हैं। तुलसी भी ऐसी भाषा में इस शास्त्र को उतारते हैं और पांच सोरठें आरंभ में लिखते हैं।

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन ।।

तुलसीदासजी ने लोकबोली में शास्त्र को उतारा। पहले गणेशजी की वंदना की। गणेश मानी विवेक। रोज गणेश की पूजा करे ये प्रणम्य है, लेकिन न कर सके तो जीवन में विनय और विवेक रखे तो वो भी गणेशपूजा है। उसके बाद तुलसीजी ने सूर्य का स्मरण किया, भगवान भास्कर का। जैसे हम सूर्य नमस्कार करते हैं, सूर्य को अर्घ्य चढ़ाते हैं आदि-आदि जो करते हो। लेकिन यदि हम ये न कर सके तो प्रकाश में जीने का संकल्प करे कि जहां तक हमारी समझ रहेगी, हम अंधेरे में न जीये, उजाले में जीये। यानी सद् में जीये, असद् में न जीये, सूर्यपूजा हो जाएगी। भगवान विष्णु का स्मरण किया। विष्णु का अर्थ है विशालता। वैदिक लोग पुरुषसूक्त का पाठ करते हैं। भगवान विष्णु के सहस्रनाम का पाठ 'महाभारत' अंतर्गत हम करते हैं। लेकिन ये सब हम न कर पाये तो हमारे विचार, हमारे खयाल विशाल रखे; संकीर्ण न रखे; ये विष्णु की पूजा मानी जायेगी। उसके बाद तुलसी ने शिव और पार्वती की वंदना की। शिव है कल्याण। दूसरों का शुभ हो, दूसरों का कल्याण हो ऐसा सोचना शिव अभिषेक है। और अपनी श्रद्धा भय से या प्रलोभन से कभी टूटे ना ये है भवानी की पूजा; ये है शक्ति की आराधना। तो पंचदेवों की पूजा-स्मरण किया। और मूलतः हमारी वैदिक परंपरा में, सनातन धर्म की परंपरा में जगद्गुरु शंकराचार्य भगवान ने पांच देवों की पूजा करने की हमें सीख दी है। तुलसी ने इसी बात को अपने शास्त्र में प्रथम स्थान देकर शैव्य और वैष्णवों का मिलन किया, सेतुबंध किया। उसके बाद तुलसी चौपाई में कथा का आरंभ करते हैं। 'रामचरित मानस' का पहला प्रकरण गुरुवंदना का है।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।
समन सकल भव रुज परिवारू ।।

गुरुचरणकमल, गुरुचरणपराग, गुरुचरणरज, गुरुचरण की नखज्योति, ये सब की वंदना गोस्वामीजी ने की। अद्भुत गुरुमहिमा तुलसी ने अपनी ओर से पेश किया। जीवन में जहां तक मेरा व्यक्तिगत अभिप्राय है, कोई न कोई चाहिए। कोई सद्गुरु, कोई बुद्धपुरुष हमारे जीवन का कर्णधार बने ये आवश्यक है। दुनिया बहुत आगे बढ़ रही है; बौद्धिक छलांग बहुत उंचाई पकड़ रही है तब लोग कभी-कभी कहते हैं कि गुरुओं की क्या जरूरत है? सब अब तो ऐसे हो सकता है! अब गूगल में सब कुछ मिल जाता है। गुरु की क्या जरूरत है? और बात भी तो सही है। गूगल में सब कुछ है। मना तो नहीं कर सकते। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि गुरु की जरूरत नहीं है। प्रश्न ये उठे कि किस गुरु के पास जाये? उपनिषदों ने गुरु की बड़ी-बड़ी कठिन व्याख्याएं की हैं। 'शाब्दे परे निष्णाते च...।' दो लक्षण बताये उपनिषदों ने कि ऐसे बुद्धपुरुष के पास जाना जो तुम्हारे मन में जो भी समस्या और शंका है तो तुम जिस बोली में समझ सको, ऐसे शब्दों में तुम्हारे मन की तमाम समस्याओं का पूर्णतः समाधान दे दे ऐसा शब्द निष्णात हो उसके पास जाना। और 'परे' मानी केवल शब्दों में ही घूमता न हो, कोई परम तत्त्व में भी वो रममाण रहता हो। परमतत्त्व में उसकी पूरी निष्ठा हो। ऐसे महापुरुष के पास मुमुक्षु लोगों को, जिसको उत्तम मुक्ति चाहिए, उत्तम गति चाहिए ऐसे गुरुजनों के पास जाना चाहिए, ऐसा उपनिषदों का भी उपदेश है। तो कोई गुरु जरूरी है। हम जैसों के लिए तो जरूरी है। ख़ास करके मेरे लिए तो है ही है। आज की बौद्धिक उड़ान कहती है कि गुरु की क्या जरूरत है? ये बात सही है, एक व्यक्ति को गूगलवाला उड़ाता है गेलेक्सी में, सूर्य में! और फ़िर वहीं से ला लाकर हमारे सामने पेश कर देता है! ये विज्ञान की जो उड़ान है उसको सलाम किये बिना रह नहीं सकते। लेकिन यही घटना तो 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड' में एक गुरु की कृपा से हुई है। गुगल का धूप करनेवाला एक वैदिक साधु था, एक विप्र था, जिन्होंने भुशुंडि पर करुणा की तो भुशुंडि ने ये सब देखा! आज की ये वैज्ञानिक शक्ति कर सकती है वो ओलरेडी उसने की है।

मुझे पूरा भरोसा है। मैं इस प्रतीक्षा में हूं। हम रहे न रहे अल्लाह जाने! लेकिन मैं प्रतीक्षा में हूं। अल्लाह मेरी प्रतीक्षा सच भी करेंगे शायद। विज्ञान को कभी तुलसी के 'उत्तरकांड' को देखना पड़ेगा कि ये आदमी क्या कर गया है? ये मैं 'रामायण' गाता हूं इसीलिए 'रामायण' की वाह-वाह नहीं कर रहा हूं। ये मेरा अनुभव कह रहा है कि इसमें ओलरेडी है। सवाल है गुरु चाहिए हम जैसों को। और गुरु ऐसा होना चाहिए-

'दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च।'

इतनी बातें जहां देखो तो समझना फोलो करने जैसा आदमी है ये। उसके साथ चलने से जीवन में प्रसन्नता बढ़ेगी; जीवन निर्भार होगा। पहला सूत्र 'भागवत'कार ने दिया है 'दान।' जिस व्यक्ति में आप दान की पूरी मात्रा देखो, समझना कि ये आदमी गुरु होने के योग्य है। यहां दान का मतलब केवल रूपया ही नहीं। रूपया हो उसको तो देना चाहिए लेकिन दान का मतलब केवल रूपया नहीं। अच्छी दृष्टि दे, अच्छा विचार दे, अच्छा सूत्र दे। अरे छोड़ो! हम आमने-सामने आये तो एक अच्छी मुस्कुराहट दे, प्यार भरे बोल दे, ढाढ़स दे। देना है तो बहुत कुछ हमारे पास है। बुद्धपुरुष क्या करता है? यही तो दान करता है सब को; दृष्टि देता है, सूत्र देता है, मंत्र देता है, क्या नहीं करता? जो दातार है वो गुरु है। क्षमा देता है; राहत देता है; सहयोग देता है; गिरे को थामता है।

'श्रीमद् भागवत'कार आगे का लक्षण बताते हुए कहते हैं, 'स्वधर्मो।' ऐसी व्यक्ति को गुरु के लिए वरण करना जो स्वधर्मनिष्ठ है। धर्म यानी स्वभाव। जो अपने स्वभाव में जीता है। धर्म मानी स्वभाव, ऐसा लाओत्सु ने भी कहा है, भगवान बुद्ध ने भी कहा है। गुरु के पास ना कहना भी सीखो। ये जरा विचित्र है साहब! मैं आप को उकसा रहा हूं! और नासमझी से ये सूत्र आपने पकड़ा तो आप चूक भी कर सकते हैं! मेरे पास प्रमाण है।

निझामुद्दीन ओलिया बैठे हैं एक सायंकाल को। उसका बहुत प्यारा अंतरंग शिष्य अमीर खुशरो, उसने कहा, दाता! करीब-करीब मैं आप को नब्बे प्रति शत पी चुका हूं। मुझे राज़ी होना चाहिए, मुझे संतुष्ट होना चाहिए कि मेरे गुरु को मैंने नब्बे प्रतिशत आत्मसात् कर लिया है। अब कोई इच्छा पेश नहीं करनी चाहिए फ़िर भी

तुलसी ने 'रामचरित मानस' में भगवान राम को भुवनेश्वर कहा है। राम है भुवनेश्वर। वो केवल दशरथ के भवन का ही निवासी नहीं है; तत्त्वतः वो भुवनेश्वर है। हमारे लिए सीमित बनकर खेल रहा है लेकिन तत्त्वतः ये ब्रह्म है, ये व्यापक भुवनेश्वर है। 'मानस' में चौदह भुवन का उल्लेख बार-बार है; चौदह लोक के बारे में कहा गया है। ये कौन-कौन लोक है? ये ईश्वर-भगवान राम है यानी इससे आगे अब कुछ नहीं है।

ये दस प्रतिशत की प्राप्ति रुकी क्यों है? यानी मैं गुरु को पूरा अभी क्यों नहीं पा सका हूं? तब जो जवाब दिया था निझामुद्दीन ने वो बहुत महत्त्व रखता है। उसने कहा कि थोड़ा जो अटका हुआ है पीने के लिए वो इतना ही है कि तू हर बात मेरी मानता है। कभी सोचे, कभी ना सोचे, कभी गुरु नाराज़ न हो जाए इसीलिए, कभी शरणागति के कारण, कभी ऐसे कि वो कहते होंगे वो ठीक ही होगा। तू ऐसे हर बात मान लेता है। ये कोई बुद्धपुरुष ही कह सकता है, ध्यान देना! धर्मगुरु ऐसा नहीं कह सकता! कुलगुरु तो कह ही नहीं सकता! तो ये पूरा कैसे हो? तब कहा कि तू कभी मुझे मेरे सामने ना कहना भी सीख ले, 'दाता! ये ठीक नहीं है', ऐसे बोलने की हिम्मत जूटा। गुरु चाहता है कि मेरा शिष्य, मेरा आश्रित एक भेड़ की तरह सुनता न जाय। एक गतानुगति न करे वर्ना अटक जाएगा। बोले, दाता! मैं कैसे कह सकूं ऐसा? बोले, सुन, मैं डांटूं तो तू मुझे सहन नहीं कर सकेगा, लेकिन तू मुझे डाटेगा तो मैं तो सहन भी करनेवाला आदमी हूं। इसीलिए जो बात तेरी आत्मा कुबूल नहीं कर सकती है उसके बारे में कभी ना कहना भी सीखो। ये अमीर के लिए बोला गया शब्द है, हमारे लिए बोला गया शब्द नहीं है। हम उसको परिपक्व करें तब बोले। बिना सोचे उसका ईस्तेमाल न करे, ये ध्यान रखना। लेकिन बात तो है! ये बुद्धपुरुष ही इतनी आज़ादी दे सकता है; ओर कोई नहीं दे सकता।

तो गुरु वो है जो निजता में डूबा है; अपने स्वभाव में रहता है। आप अपने स्वभाव में जी न सको तो कोई चिंता नहीं, लेकिन कोई अपने स्वभाव में जीता हो उसको स्वभाव से विपरीत ले जाने की हिंसा मत करना प्लीझ! ये जीवन बहुत अमूल्य है। 'नियमो यमश्च।' उनके जीवन में ऐसे नियम होते हैं कि नियम जंजीर नहीं बनते, घूंघरू बनते हैं। हमारे नियम बंधन बन जाते हैं; बुद्धपुरुष के जीवन के नियम घूंघरू बन जाते हैं। गुरु जैसा कौन नियम निभायेगा? और 'यमश्च।' बुद्धपुरुषों के यम के बारे में तो कौन कहे? 'श्रुतं च कर्माणि।' 'श्रुतं' का अर्थ है स्वाध्याय। वेद कंठस्थ हो, शास्त्र कंठस्थ हो ये सब हो तो भी वेद का पारायण न छोड़े। उसको कहते हैं 'श्रुतं'; उसको कहते हैं गुरु का एक लक्षण। 'श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।' स्वाध्याय करते-करते यदि गुरु संसारी है तो अपने संसार के प्रत्येक कर्म को सम्यक् रूप से निभायेगा; अपना सभी उत्तरदायित्व पूरा करेगा। और जो सद्व्रता है। और 'परोहि योगोमनश्चसमाधि।' 'भागवत'कार कहते हैं, इस तरह जो बुद्धपुरुष जाता है उसको परम योगी जैसा महापुरुष समझना क्योंकि जिसका मन इस तरह समाहित हो चुका है; समाधि को उपलब्ध हो चुका है।

कहने का अभिप्राय, गुरुमहिमा अद्भुत है। तो हमारे जैसों को कोई गुरु, कोई श्रद्धेय चरण चाहिए जहां हम अपना दिल खोल सके। चोर्यासी योनि में जलचर, नभचर कोई भी हो इन सब में सीताराम की झांकी करे और सीताराम को ही देखे। गुरु की कृपा से ऐसी दृष्टि प्राप्त की। ऐसी दृष्टि से तुलसी ने पूरे जगत को प्रणाम किया। फ़िर महाराज दशरथ की वंदना की। रानियों की वंदना की। जनक महाराज की वंदना की। भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न की वंदना की। और राम-सीता की वंदना करने के पहले तुलसीदासजी रामकथा के क्रम में वंदना प्रकरण में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना करते हैं। आईए, हम सब हनुमानजी की वंदना करे-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन ।
सकल अमंगल मूल-निकंदन ।।

आप भी आप के दिल में बात बैठे तो किसी भी धर्म के आप फोलोअर्स हो, कोई भी धर्म की आप की साधना हो, मुबारक। लेकिन हनुमानजी का आश्रय करोगे तो अपने ईष्ट अथवा तो अपने-अपने धर्म में प्रसन्नतापूर्वक गति बढ़ेगी। हनुमानजी प्राणतत्त्व है, वायुतत्त्व है। उसकी यदि हमारे उपर छाया हो तो क्या नहीं हो सकता? और हनुमानजी का नियम है, वो सदैव पीछे रहते हैं। प्लेन में मुसाफरी करनेवाले जानते हैं कि जब पवन पीछे का होता है तो ढ़ाई घंटे में जो फ्लाईट पहुंचनी होती है वो डेढ़ घंटे में पहुंच जाती है। वैसे हनुमानजी का जिसको पीठबल होता है, तो बहुत जल्दी पहुंच जाते हैं आदमी। तो हनुमानजी का आश्रय करना, बस। अपना इष्टदेव, मंत्र मत बदलना। जो आप करते हो, बदलना मत। लेकिन हनुमानजी तो प्राणतत्त्व है। हनुमान तो चाहिए ही। बहन लोग भी 'हनुमानचालीसा' कर सकते हैं, 'सुन्दरकांड' कर सकते हैं, प्रणाम कर सकते हैं। हनुमानजी की मूर्ति घर में हो तो पूजा भी कर सकते हैं। कोई चिंता नहीं, डरना नहीं। कोई मंदिरों में विशेष ऐसी व्यवस्था हो, ऐसा हो तो जिद्द भी नहीं करना। बाकी सब को अधिकार है। 'हनुमानचालीसा' का आश्रय करना। ये सिद्ध भी है और शुद्ध भी है।

भवन की सीमा होती है, भुवन की सीमा नहीं होती

मानस-भुवनेश्वर
: २ :

'मानस-भुवनेश्वर', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। हम भगवान भुवनेश्वर की इन दिनों में वैचारिक परिकम्मा कर रहे हैं। तुलसीजी लिखते हैं कि भगवान राम केवल नरभूपाल नहीं है। पहली बात, 'तात राम नहिं नर भूपाला।' हमारे यहां कई प्रकार के राजा है; जैसे एक बार मेरी व्यासपीठ ने कहा भी था कि 'हनुमानचालीसा' में ऐसा लिखा है -

सब पर राम तपस्वी राजा।
तिन्ह के काज सकल तुम साजा।।

तो वहां भगवान राम को तुलसीदासजी ने तपस्वी राजा कहा है। राजा तीन प्रकार के होते हैं। बड़े कीर्तिमान होते हैं, जिसको हम यशस्वी कह सकते हैं। जैसे कि महाराज दशरथजी; वेदों में उसकी प्रतिष्ठा है। जनकजी भी ऐसे हैं परम यशस्वी राजा। कई राजा बिलकुल मनस्वी होते हैं; जैसे कि रावण। मन के तरंगों के साथ जो बिलकुल बेफाम वर्तन कर रहा है! कुछ-कुछ मात्रा में हम कंस को भी कह सकते हैं कि कंस भी जरा मनस्वी राजा था। 'महाभारत'काल में जरासंध भी कुछ-कुछ ऐसा लगता है, मनस्वी। ये तो हुई पुरानी बातें। लेकिन वर्तमान समय तक हम चले आये तो कई सरमुखत्यार ऐसे हुए हैं इतिहास में। मैं नाम लेना नहीं चाहता। लेकिन बहुत बड़ी मात्रा में हमारे यहां मनस्वी राजा हुए हैं। लाखों की हत्या करना उनके लिए मन का तरंग मात्र होता है! मैं कोई कन्ट्री का नाम लेना भी नहीं चाहता, लेकिन आज-कल जो घटनायें घट रही है पूरी पृथ्वी पर इनमें कोई छोटे-छोटे मूलक भी इतने मनस्वी रूप से वर्तन कर रहे हैं कि कितनों की हत्या उनके लिए एक खेलमात्र है! ये सब मनस्वी राजा है।

राम है तपस्वी राजा। विश्व को चाहिए तपस्वी राजा। 'तात राम नहिं नर भूपाला।' हमारे यहां हरेक समाज के राजा होते हैं। पशुयोनि चले जाये तो पशुओं में हम शेर को वनराज कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण 'भगवद्गीता' में शेर को अपनी विभूति के रूप में सन्मानित करते हैं मृगेन्द्र कह कर। पक्षीओं में भी राजा है। 'रामचरित मानस' का एक बहुत महान पात्र है खगराज गरुड। ये पक्षीयों का राजा है। गरुड को पक्षीयोनि ने राजा के रूप में स्वीकार किया है। पर्वतों में हम सबने और भगवान ने भी और हमारे संस्कृत विद्वानों

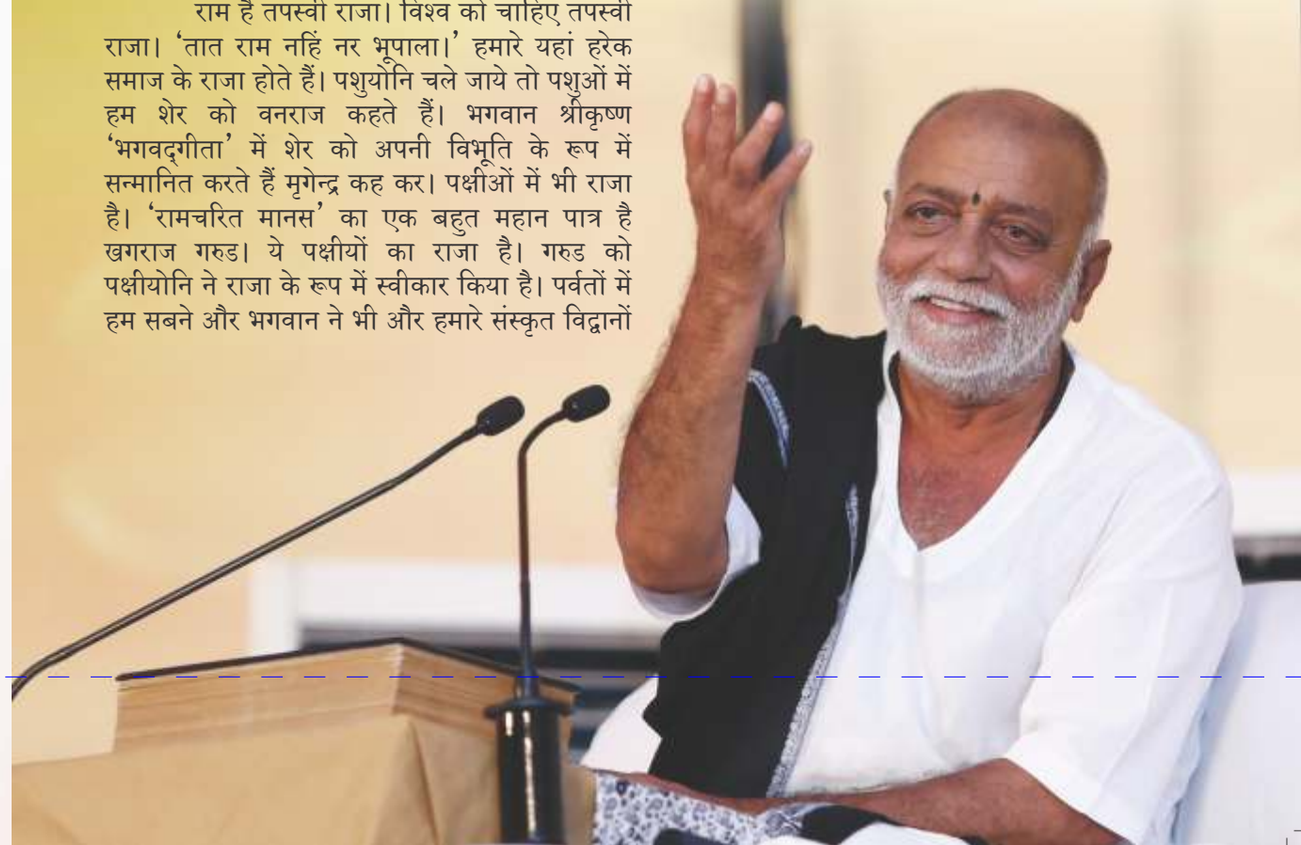

ने भी हिमालय को राजा माना है। 'हिमालयो नाम नगाधिराज:।' ये स्थूल जगत में राजा है। पहाड़ों में राजा है।

वैष्णव जगत की बात करूं तो गोवर्धन को हम गिरिराज कहते हैं। 'महाप्रभु श्री गिरिराजधारी।' वैष्णवों का ये प्रेम-उद्‌गार है। एक अर्थ में चित्रकूट को भी संतों ने राजा कहा है। हमारे यहां फलों में आम के फल को राजा माना है। 'मानस' के आधार पर बंदरों के राजा वालि भी है, सुग्रीव भी है। ब्रह्मा के अंश से अवतरित जामवंतजी रींछ समुदाय के राजा माने गये हैं। 'रींछपति' तुलसीजी उसको कहते हैं। पूरी देवयोनि का हम जिक्र करें तो देवताओं का राजा इन्द्र को कुबूल किया है। देवराजा इन्द्र सुरेश, देवेन्द्र आदि-आदि उनके नाम हैं। असुरों के राजा बदलते रहे हैं। कभी कोई, कभी कोई। तो असुरों में भी राजा है। देवताओं में भी राजा है। और कभी-कभी हम व्यवहार में कहते हैं कि ये आदमी तो मूरख का राजा है! मूरखों में कोई राजा होता है! कुछ समय के लिए, कुछ दिनों के लिए माना, लेकिन दुल्हे को भी हम राजा कहते हैं। और जब बालक का जनम होता है, वो भी बेटा है तो अक्सर पूरा परिवार उसको 'मुन्नाराजा' कहकर या मेरा 'राजा बेटा' कहकर पुकारते हैं। पूरी प्रकृति में कोई न कोई राजा है। रात के राजा को रजनीश कहते हैं। दिन के राजा को दिनेश कहते हैं। और जो बहुरूप लेके आते हैं हमारे यहां बहुरूपी उसको भी हमारे यहां भांडराजा कहते हैं। और यहां कवियों को भी राजा कहा है, 'कविराज।' और संतों को, आचार्यों को भी भरद्वाज जब कहते हैं कि महाराज, आप कब पधारे? महाराज, आप कहां प्रस्थान करते हैं? उसको भी हम राजा कहते हैं।

कई प्रकार से राजाओं की बातें आती है। लेकिन शास्त्रों में राजा कौन? अपनी-अपनी श्रद्धा का सवाल उठेगा। वैदिक परंपरा तो कहेगी और योग्य भी है, गौरव भी है हमारा कि शास्त्रों में राजा तो वेद माना जाय। 'राजाधिराजा ये प्रशस्तास्तु ते' ये कहकर पुरुषसूक्त का उद्‌घोष किया जाता है। वहां शुभ संकेत होता है वेदों के प्रति। फिर इस्लाम धर्म अपने पवित्र ग्रंथ को राजा कहे, सलाम। अवश्य, उसको भी हम आदर करे। ईसाई लोग अपने ग्रंथ को राजा कहे; मुझे कोई आपत्ति नहीं। ये पवित्र बाईबल को राजा कहे तो स्वागत है। बौद्ध लोग धम्मपद को कहे, आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वो उनकी श्रद्धा। कोई गुरुग्रंथ साहब को कहे। जैन लोग आगमों को, अपने सभी ग्रंथों को राजा कहे तो कुबूल। हम अपनी श्रद्धा से चलेंगे। सबकी अपनी-अपनी श्रद्धा होती है। तो, वेद को हम राजा कह सकते हैं। वेद राजा है, नो डाउट। लेकिन फिर समयांतर में विद्वानों ने एक निर्णय ओर दिया कि 'महाभारत' ये पंचम वेद है। तो 'महाभारत' भी राजा बन गया। इतिहास ग्रंथों का, महाकाव्यों का राजा बन गया। और मेरी व्यासपीठ 'रामचरित मानस' को वेद कह देती है। ये मेरी श्रद्धा है। उसको आप एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देना। प्लीज़! मैं तो बोलता रहूंगा। आपको महत्त्व का लगे वो ही रखना। खाली रहो। बदायूंनीसाहब का सीधा-सादा शे'र है कि -

पहले खुद को खाली कर।
फिर खुद की रखवाली कर।

ज्ञान से, विचारों से, शास्त्रों से, न जाने किन-किन वस्तुओं से हम भरे हुए हैं! शायर कहता है, पहले इन सबको निकाल दे। शून्य हो जा, रिक्त हो जा। फिर तेरी शून्यता का रक्षण कर। संभालनेवाला एकांत ही है।

तो बाप! सबकी अपनी रीति है। जो रास न आये उसको निकालते जाओ! नया आने दो। और जिस समय सुनते-सुनते एन्जोय कर लिया वो लम्हा, वो पल जब तुम्हारे अंतर की बीना झंकृत कर दे, बस यही तो उपलब्धि है। तो मेरे भाई-बहन, मैं अपने ढंग से कहता हूं क्योंकि मैं कहूं तो तो आप ये भी मानेंगे कि रामकथा गाते हैं तो रामकथा की बात कहेंगे। अवश्य, कहूंगा ही। लेकिन रहीमसाहब ने, मुस्लिम कवि रहीम ने कभी 'रामचरित मानस' के बारे में अभिप्राय देना था तो तुलसी के इस शास्त्र पर दिया था, ये 'रामचरित मानस' निर्मल शास्त्र है, संतों का तो जीवन प्राण है। हिन्दुओं को तो ये साक्षात् वेद है और जो ओर धर्मनिष्ठा रखते हैं, पवित्र कुर्रान में निष्ठा रखते हैं उसको तो ये पवित्र कुर्रान की तरह है, ऐसा रहीमसाहब ने एक बहुत बड़ा वक्तव्य तुलसीकाल में दिया है। और तुलसी स्वयं कहते हैं, 'गावत बेद पुरान अष्ट दस।' जिसकी आरती स्वयं वेद उतारता है। मुझे कुछ सिद्ध करने की जरूरत नहीं है। और हिमालय राजा है तो हिमालय उपर बैठनेवाले शिव के बारे में आप क्या कहोगे? चंद्रशेखर है। और मेरे पास 'स्कंदपुराण' का ये मंत्र है -

वसतस्यमहादेव पातालभुवनेश्वर:।
ब्रह्माविष्णुमहेशानांकृत्वैकत्वंनरेश्वर:।।

सयन्तिसेवगणा:सेवितु भुवनेश्वरं।
निवसन्ति:पाताले महेन्द्रब्रह्ममुखां।।

शिव भुवनेश्वर है। मैंने कई बार आपके सामने निवेदन रखा है कि जहां भी 'ईश्वर' शब्द आये, 'ईश' आये तो समझना सीधा संकेत शंकर की ओर है। यद्यपि राम ईश्वर है; कृष्ण ईश्वर है, अवश्य। लेकिन बिलकुल स्पष्ट रूप में 'ईश' या 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग सीधा महादेव की ओर होता है। शिव, शिव है। सोमनाथ को हम 'सोमेश्वर' कहेंगे। केदार को हम 'केदारेश्वर' कहते हैं। त्र्यंबक को हम 'त्र्यंबकेश्वर' कहते हैं; 'महाकालेश्वर' कहते हैं। करीब-करीब 'ईश्वर' शब्द भगवान शिव के प्रति ज्यादा सटीक है; और है। शिव ईश्वर है।

तो पृथ्वी पर हिमालय राजा और हिमालय पर बिराजमान शंकर ये भुवनेश्वर है। तो फिर 'रामायण'? 'गावत संतत संभु भवानी।' निरंतर शिव और पार्वती 'रामायण' का गान करते हैं तो अपनेआप 'रामायण' उपर चला जाएगा। मैं फिर एक बार कहूं, मुझको संकोच हो रहा है कि आप कोई छोटा अर्थ न कर ले कि बापू रामकथा गा रहे हैं इसीलिए इसको बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हैं। नहीं; ये है तो है; रहेगा। रहीम उसको वेद कहते हैं। मैं अपनी श्रद्धा से उसको पांचवां वेद कहता हूं। क्योंकि चार वेद तो ब्रह्मा के मुख से निकले हैं। और 'रामायण' शंकर से मुख से निकला। और शिव के मुख पांच है इसीलिए मैं भी उसको पंचमवेद मानता हूं। आपको कुबूल करने की जरूरत नहीं। कोई भार मत रखना। लेकिन 'रामायण' वेद है। इन दिनों में मैं 'रामायण' की महिमा जरूर गाउंगा, क्योंकि रामनवमी राम का जनमदिन तो है, लेकिन 'रामचरित मानस' का प्राकट्य दिन है। कृष्ण की बोली में कहूं तो राम तो 'संभवामि युगे युगे।' भगवान तो प्रतियुग में आते हैं। 'रामचरित मानस' तो बहुत कल्पों के बाद कभी अवतरता है साहब! ये बहुत दुर्लभ शास्त्र है साहब! इसीलिए उसको केवल एक ग्रंथ मत मानना।

कुछ प्रश्न मेरे पास आया है उसमें ये एक उठा लूं, 'बापू, आपने कल 'रामचरित मानस' का पाठ करने का स्वाभाविक विनय किया। कोई दबाव नहीं डाला। हमारी रुचि बढ़ गई कि हम 'मानस' का पाठ करे। लेकिन कृपया, आप विधि बताये।'-उडीसा का आपका फ्लावर। पहली बात तो ये कहूं मेरे श्रोता, 'रामचरित मानस' का पारायण करने की मेरी समझ में कोई विधि नहीं है। हां, आप पूछते हैं, सही है क्योंकि 'रामचरित मानस' में भी पाठ की विधि बताई गई है कुछ आगे। लेकिन कोई विधि नहीं, बस। मैं इतना ही कहूं, विश्वास ही विधि है। और कितनी ही आप विधि करो और विश्वास न हो तो? 'मानस' में लिखा है, मैं जिन ग्रंथों से पढ़ा हूं, दो प्रकार के ग्रंथों से उसमें विधि-विधान बहुत आते थे। लेकिन न मेरे दादाजी ने कभी विधि का पन्ना खोलने दिया, न मुझ में खुलने दिया। फिर उसकी गर्भित आज्ञा समझकर हमने अपने ढंग से 'रामचरित मानस' को मुद्रित करवाया। तो उसमें कोई विधि आपको नहीं मिलेगा। सीधा 'बालकांड' शुरू हो जाएगा और 'उत्तरकांड' में पूरा हो जाएगा। आप अपनी श्रद्धा के अनुकूल करियेगा, लेकिन मेरे पास कोई विधि नहीं है। विधि होगा तो निषेध होगा। ये सापेक्ष है। एक सिक्के के दो पहलू है। आप विधि करो तो कुछ निषेध आयेगा ही। छोड़ो। प्रेम करने में कोई विधि होती है कि पहले ऐसे छुओ; फिर ऐसे मुस्कुराओ! कौन विधि? विधि की जाल ने इन्सान के बहुत समय को बरबाद किया है। आपकी श्रद्धा विधि-विधान में हो तो जरूर करो। लेकिन सम्यक् करो। विधि थका देगी, विश्वास हल्का-फूल्का, ताजा-तरौजा रखेगा। रोने की बिधि होती है? रोना तो आता है। न मुस्कुराने की कोई बिधि होती है, न रोने की कोई बिधि होती है। मुस्कुराने के लिए दर्शन जरूरी है और रोने के लिए स्मरण जरूरी है। इसके लिए कोई क्लासीस, कोई वर्कशोप नहीं होते। पाठ के लिए कोई विधि नहीं है। ये कलियुग है साहब! बहुत छोटी जिंदगी है हमारी। विधि-विधान ने हमारे समय को बहुत बिगाड़ा है। घंटों तक बिठाये रखते हैं और हाथ में कुछ नहीं आता! जो-जो करवाते हैं उसके हाथ में बहुत कुछ आ जाता है! लेकिन श्रद्धा का विषय हो तो मैं उसमें नहीं जाऊं। आपको मुबारक। लेकिन जब विधि पूछी ही है तो तीन सूत्र समझ लीजिएगा। ये विधि के रूप में नहीं, पाठ का अमृत हमें ओर प्रसन्नता प्रदान करे इसीलिए तीन वस्तु का ध्यान रखना, मेरे श्रावक भाई-बहन।

रोषे दोषे तीव्र घोषे च विनिर्मुक्तपारायणेसमाचरेत्।

शास्त्र पारायण कैसे करना चाहिए उसका सूत्रपात करते हैं। हो सके तो इतना ध्यान रखना। पाठ कभी भी करो उसी समय रोष न करो, बस। शास्त्र पारायण दरमियान रोष शास्त्र-अपराध है। हमको बुखार आता है तो कितना भी महत्त्व का स्वादवाला भोजन हमें फ़िक्का पड़ जाता है। भोजन ने कोई शाप नहीं दिया कि बुखार है इसीलिए तुम्हें स्वाद नहीं आने दूंगा! लेकिन हमारे खुद के बुखार के

कारण जो हमें बहुत प्रिय चीज़ होती है, वो ही बेस्वाद लगने लगती है। दो चौपाईयों का पाठ करो। 'गीता' के एक मंत्र का पाठ करो। बाईबल के किसी एक सूत्र का; यहां सब छूट है, लेकिन रोषमुक्त चित्त से करो। वर्ना शास्त्र-अपराध है। शास्त्र शाप तो नहीं देता, लेकिन हमारे प्रति उसको दया आने लगती है कि मैं तो जितना तुम्हें चाहिए इतना ही अमृत देता हूं, लेकिन तेरे ताप के कारण, तेरे चित्त की उग्रता के कारण तू अमृत के स्वाद से वंचित रह गया! क्यों घाटे का सौदा करें? छ बार रोष नहीं करने की बात तो मैं बिनती के रूप में कहता रहता हूं कि जागते समय नहीं, सोते समय नहीं, भोजन करते समय नहीं, भजन के समय नहीं, बाहर जाते समय नहीं, लौटते समय नहीं। इतना आदमी ठीक से करे। बहुत अच्छा लगेगा।

दूसरा दोष। दो अर्थ दोष का। शास्त्र का पाठ करे तब पाठ का दोष न हो ऐसे करे यानी उच्चार ठीक हो ऐसे करे। लेकिन मैं इस पक्ष में ज्यादा नहीं जाऊं। क्योंकि हम जीव है, भूल हो जाये। लेकिन यहां दोष का व्यक्तिगत रूप में मेरा मतलब है, पारायण जब करो तब दूसरों के दोष को देखते हुए न करो। कोई भी शास्त्र का पाठ करो तो दूसरों का दोष देखकर न किया जाय। 'रोषे दोषे तीव्रघोषे च ...' पारायण अतिशय बुलंद आवाज़ से न करो। सूर में करो, संगीत में करो, लय में करो, ताल में करो, ये तो और रस निष्पन्न करेगा। लेकिन तीव्र घोष से नहीं! मैंने एक महानुभाव को देखा था उसके घर में ठहरा था। मैं उपर रहता था, नीचे वो रहते थे। लेकिन गायत्री मंत्र का इतना तीव्र घोष करता था कि स्लेब हिलता था! ये अतिशयोक्ति अलंकार है। तीव्रघोषे नहीं करना। हां, ऊर्ध्वबाहु होकर गौरांग चैतन्य ने कहा था, 'हरिबोल...हरिबोल...' लेकिन ये तीव्र उद्घोष नहीं था, ये भाव का उद्रेक था। युद्ध में शोर होता है; बुद्धत्व में शांति होनी चाहिए। तो, जब पाठ करो तो रोष न करो। पाठ करो, औरों का दोषदर्शन भी न करे, स्मरण भी न करे। और तीसरा, तीव्र घोष न करे, कोलाहल पैदा न करे। इन तीनों से मुक्त होकर पारायण करो ऐसा संहिताकारों का वचन जो मैंने पढ़ा था। बाकी कोई विधि नहीं है।

हमारी चर्चा चल रही थी कि हमारे यहां राजाओं का बहुत बड़ा क्षेत्र है। तो वेद है राजा। और वेद 'रामायण' की आरती उतारता है, तो 'रामायण' के बारे में क्या कहोगे?

तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेस्वर कालहु कर काला ।।
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर ।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ।।

तो, हे तात! राम केवल नरभूपाल नहीं है। राम भुवनेश्वर है। अखिल ब्रह्मांड के मालिक है। और हमारे यहां भुवन की संख्या चौदह है। चौदह तो केवल एक सीमा दिखाने के लिए है। बाकी भुवन असंख्य है। पहले तो हमारे यहां बहुत सरलता से तीन भुवन की चर्चा है। पाताल, पृथ्वी और आकाश। इसको हम तीन भुवन कहते हैं। स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक, पाताललोक। तो पहले हमारे यहां प्राथमिक रूप में तीन लोक की बात आई; त्रिभुवन। फ़िर थोड़ा विस्तार हुआ, साधक चित्त विकसित हुआ तो फ़िर चौदह भुवन की बात आई। पहले तीन भुवन अथवा तीन लोक। फ़िर चौदह भुवन, चौदह लोक। फ़िर तुलसीदासजी को लगा कि उसको मैं संख्या में कैसे बांध सकूं? तो-

मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ।

वहां भगवान कहते हैं, मेरे भुवन में अनेक भुवन है। तो तीन, चौदह, अनेक। उसके आगे फ़िर कोई बात नहीं। अनंत ब्रह्मांड। मुझे तो आपके सामने नव दिन में तीन भुवन और चौदह भुवन की ही चर्चा करनी है। उसमें आध्यात्मिक भुवन कौन है? 'भुवन' और 'भवन' में अंतर है इतना ध्यान रखना। भवन की सीमा होती है, भुवन की सीमा नहीं होती। भवन, जैसे 'दशरथ भवन।' 'मंगल भवन।' 'कनक भवन।' भवन की अपनी सीमा होती है। भुवन उसको कहते हैं जो सीमामुक्त है। इसीलिए ब्रह्मांड की कोई सीमा नहीं है।

तो, अनेक ब्रह्मांड है। कोटि-कोटि ब्रह्मांड है। लेकिन अनेक भुवन, चौदह भुवन, तीन भुवन इसका कोई बीज तो होना चाहिए। क्योंकि बीज से सब विराट है। और 'रामायण' बीज की बात करती है। 'मानस' हमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बीजत्व पकड़वाती है। और बीज हाथ में आ जाये तो बात खतम! मेरे कहने का मतलब है कि शास्त्र तो अनंत है; इस में से एक बीज पकड़ लिया जाय। रामनाम को इसलिए तुलसी बीजमंत्र कहते हैं। तो ये तीन भुवन, चौदह भुवन, अनंत भुवन इनमें बीज क्या है? उसी मूल बस्तु क्या है इसकी खोज इस कथा में हो तो मुझे लगता है कि हमें ज्यादा प्रसन्नता प्राप्त हो सकती

है। पूरा रहस्य खोजा जा सकता है एक छोटे से बीज-से। तो भुवनेश्वर यहां राम को कहा है। बाकी भुवनेश्वर भगवान शिव को भी अधिकतम लागू होता है।

हम व्यक्ति के रूप में एक है। लेकिन साधना की जब बात आती है तब मेरा जो स्पष्ट समझना है गुरुकृपा से वो मैं आप से कहूं। जब भजन करो, स्मरण करो, जप करो जो भी करो उसी समय आप पृथ्वी पर बैठे हैं ऐसा सोचकर मत करे। ये बड़ा प्यारा प्रयोग है यहां, 'निवसन्ति हि पाताले महेन्द्रप्रमुखां इह।' ये बहुत बडा संकेत है। और ये मंत्र तो मुझे आज मिला है, गति पुरानी है। जब भी भजन करो, जो भी करते हो तब पृथ्वी पर मत करो। अब आप कहोगे कि पृथ्वी पर तो हम है। वो तो है ही। लेकिन अभ्यास करते हुए ऐसी मानसिकता साधक बनाये कि जब भजन करे तब पृथ्वी पर मैं नहीं हूं, मैं पाताल में हूं। सात लोक नीचे है, सात उपर है। कुल मिलाकर चौदह भुवन है हमारे यहां। पाताललोक का एक स्पष्ट अनुभव साधनापक्ष में साधुओं को होता है, वहां बहुत ठंडक होती है। ये ज्वाला जो है वो बीच का मामला है। जिसको पाताल कहते हैं वहां एकदम ठंडक होती है। इसका मतलब ये हुआ कि जब आदमी भजन करे तब मानसिक स्थिति ये बनाये कि एक घंटा, आधा घंटा जितना समय बैठा हूं, मैं पृथ्वी पर नहीं बैठा हूं, मैं मेरे बंगले में नहीं बैठा हूं, मैं पाताल पर बैठा हूं। थोड़ा समय तो लगेगा; अपने आप अगल-बगल से ठंडक महसूस होने लगेगी। साधना के लिए बिलकुल सात्त्विक भाव से भजन करते हैं तो अस्तित्व बहुत मदद करता है। अस्तित्व के सभी तत्त्व हम में भी मौजूद है। हमारे अंदर के अस्तित्व का वो तत्त्व जब सक्रिय होता है तो जो बहिर् अस्तित्व है वो उसमें मदद करने लगता है। हमारे अंदर भी पानी है। समंदर के किनारे, गंगा के किनारे कोई शांत चित्त से बैठ जाये तो अंदर का जो पानीवाला भाग है उसको बहिर्वाला जलराशि मदद करता है, बीच में किसीको न डाले तो। आप आकाश के नीचे बैठो शांत चित्त से तो हमारे अंदर जो एक आकाश है उसको ये आसमां मदद करने लगता है। ये सब साधना के प्रयोग है। इसमें कोई विशेष क्रिया-कलाप की जरूरत नहीं।

ये अंदर का तत्त्व बहिर्तत्त्व के साथ डायरेक्ट अनुसंधान चाहता है। हम बीच में बहुत डालते हैं! इसीलिए साधना अखंड नहीं रह पाती। कोई उपकरण की जरूरत नहीं साधना के लिए। ये पूजा की सामग्री है मेरी दृष्टि में। आकाश, जल, समंदर, अग्नि, पवन, पृथ्वी ये हमारे लिए पूजा की सामग्री है। ये पंचद्रव्य है। थोड़ा प्रयोग करो आपकी रुचि अध्यात्म में है, आप इतने भाव से कथा सुनते हैं तो। पाताल यानी एक ऐसी गहराई जहां साधक को बहुत शीतलता प्राप्त होती है। फ़र्ज़ अदा करे। बाप है, माँ है, भाई है, सेवक है, शेठ है। जो-जो हमारे रिश्ते-नाते हैं। हमे फ़र्ज़ अदा करना है तो उस समय मानसिकता पृथ्वी पर रखनी चाहिए। हमारे पैर धरती पर होने चाहिए। ये हमारा दायित्य है। साधना पाताल में, साधन संपन्नता पृथ्वी पर। यहां कौन कब आया किसको पता? कौन कब जाता है किसको पता? सब मच्छर की औकात में अपने आपको नांपे-तोले जा रहे हैं! इसीलिए मेरे भाई-बहन, हमारी क्या औकात? कौन आता है, कौन जाता है अस्तित्व को पता भी नहीं है! ऐसे जगत में जब हम मनुष्य बने हैं तो दायित्व निभाने के लिए हम पृथ्वी की मानसिकता रखे। भजन के लिए पाताल की मानसिकता रखे। और परमात्मा को प्रेम करना है तो छलांग लगानी होती है। आसमां की मानसिकता से हरिभजन किया जाय। सब को छोड़कर, एक असंग

हमारे यहां भुवन की संख्या चौदह है। चौदह तो केवल एक सीमा दिखाने के लिए है। बाकी भुवन असंख्य है। पहले तो हमारे यहां बहुत सरलता से तीन भुवन की चर्चा है। पाताल, पृथ्वी और आकाश। इसको हम तीन भुवन कहते हैं। स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक, पाताललोक। फ़िर थोड़ा विस्तार हुआ, साधक चित्त विकसित हुआ तो फ़िर चौदह भुवन की बात आई। 'भुवन' और 'भवन' में अंतर है इतना ध्यान रखना। भवन की सीमा होती है, भुवन की सीमा नहीं होती। जैसे 'दशरथ भवन।' 'मंगल भवन।' 'कनक भवन।' भवन की अपनी सीमा होती है। भुवन उसको कहते हैं जो सीमामुक्त है। इसीलिए ब्रह्मांड की कोई सीमा नहीं है।

स्थिति लेकर एक ऊंचाई पकड़कर। जरूरी है थोड़ा प्रासादिक अभ्यास।

प्रधान विषय का संवाद-वार्तालाप यहां रखते हुए थोड़ा कथा का क्रम लूं। कल हम हनुमान की वंदना तक पहुंचे थे। और गोस्वामीजी ने इस वंदना प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए क्रमशः भगवान राम के सभी सखाओं की वंदना की। उसके बाद सीतारामजी महाराज की वंदना करते जानकीजी की पहले वंदना। क्योंकि 'मातृ देवो भव।' फिर राम की वंदना; 'पितृ देवो भव।' बुद्धि बार-बार मलिन हो सकती है, होती है। उसको शुद्ध करने के लिए तीन ही उपाय 'भगवद्गीता' ने बताये हैं-यज्ञ, दान और तप। 'भगवद्गीता'कार कहते हैं कि इन तीन को छोड़ना नहीं चाहिए किसीको भी। इसी जन्म में यदि आपकी उत्तम गति हो जाये तो भी ये तीन साधन न छोड़े। क्योंकि इससे बुद्धिमानों की बुद्धि बार-बार विशुद्ध होने लगती है। तो 'गीता' ने यज्ञ, दान, तप प्रयोग बताया है। 'रामचरित मानस' में बुद्धि की शुद्धि के लिए एक ही बात कही-

ताके जुग पद कमल मनावउँ ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ।।

तुलसी कहते हैं, माँ के चरणकमल को मैं मनाऊं, जिससे मुझे निर्मल मति प्राप्त हो। दोनों बात ठीक है। अवश्य। लेकिन कोई इसकी विशेष रूप में समीक्षा करे तो सरल तो यही हो जाएगा कि माँ के चरणों में विनय करे कि निर्मल बुद्धि प्राप्त हो तो न यज्ञ करना, न तप करना, न दान करना। झंझट मिटे! माँ जानकी के चरणों को मनाने से तीनों हो जाते हैं। आप कहेंगे कैसे? क्योंकि जानकी स्वयं यज्ञरूपा है। सीताजी यज्ञ से प्रगट नहीं हुई है लेकिन अकाल था जनकपुर में और पानी नहीं बरस रहा था तो कोई ऐसा यज्ञ किया जाय ताकि बारिश हो और फसल पके। यज्ञ करने के लिए जनकजी गये और हल चलाया और चास से जानकीजी निकली इसीलिए हमारे ग्रंथकारों ने जानकी को यज्ञरूपा माना है। इसीलिए सीता के चरणों को मनाने से यज्ञ हो गया। दूसरा, दान। जानकी स्वयं दानस्वरूपा है। कन्या स्वयं अपने आपको समर्पित करती है। छोटी होती है, माता-पिता को समर्पित कर देती है अपने को। ब्याहिता होती है, पति को समर्पित हो जाती है। और उम्र होने के बाद अपने बच्चों के आगे समर्पण कर देती है। नारी दानस्वरूपा है। नारी साक्षात् दान है। इसीलिए 'गीता' जब दान करने से बुद्धि विशुद्ध हो ऐसा कहे, तब जानकी चरणकमल मनाने से दान की प्रक्रिया, वो विद्या भी मेरी समझ में पूरी हो जाती है। और तप, जानकी के समान तप किसने किया है? ये तपस्या का स्वरूप है सीता। इसीलिए तपवाली बात भी मेरी समझ में वहां पूरी हो जाती है। और परमात्मा ने कहा है-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।

'जिसका मन, जिसकी बुद्धि निर्मल होगी वो ही मुझे पसंद है, वो ही मुझे पा सकता है।' तो माँ जानकी के पास तुलसी कहते हैं, मेरी बुद्धि को पवित्र कर के मैं अब राम की शरण में जा रहा हूं। तो जल और तरंग, वाणी और अर्थ की तरह कहने में भिन्न वो तत्त्वतः एक ऐसे सीता-रामजी को तुलसी ने प्रणाम किया। उसके बाद तुलसी भगवान के नाम की महिमा और नाम की वंदना का बहुत महिमावंत प्रकरण अंकित करते हैं। तुलसीजी कहते हैं, कलियुग ये नाम का युग है। गोस्वामीजी कहते हैं, सतयुग में जो ध्यान से प्राप्ति होती थी, त्रेता में यज्ञ से होती थी, द्वापर में पूजापाठ से होती थी वो सब फल कलियुग में केवल प्रभु का नाम पुकारने से होता है। तुलसी कहते हैं, प्रभु का नाम ये राजमारग है। और आखिर में तो तुलसी कहते हैं, स्वयं राम भगवान भी रामनाम की महिमा का गायन नहीं कर सकते। ऐसा है नाम का प्रभाव।

तो, मेरे भाई-बहन, हर वक्त मैं कहता हूं कि आप बड़ी कठिन साधना जो करते हो, करो। आपको प्रणाम। लेकिन आखिर में तो हरिनाम। जो बड़ी साधना कर सके, जरूर करे। लेकिन हम कहां ये बड़े-बड़े सब कर्म कर पायेंगे? इसीलिए प्रभु का नाम लो, हरि का नाम, कोई भी नाम। मुझे तो ऐसा समझ में आया है कि कभी-कभी नाम लेते-लेते पता न लगे ऐसे ध्यान भी हो जाता है। मेरी तो एक ही निष्ठा रही है, नामनिष्ठा और कथानिष्ठा। कर्मनिष्ठा भी खतम हो गई है यार! क्या कर्मनिष्ठा? हम कौन कर्म करते हैं? यद्यपि कर्म किये बिना रह नहीं सकते। ये बोलना भी कर्म है। आना-जाना भी कर्म है जरूर। लेकिन कर्मनिष्ठा अब रही नहीं! और ज्ञाननिष्ठा तो हम में है ही नहीं। कालनिष्ठा भी नहीं रही कि किस काल में भजन करे। कालनिष्ठा भी गई! गुणनिष्ठा भी गई! अब केवल एक निष्ठा और वो मेरे हरि की कथा और हरि का नाम। और जब भी प्रसन्नता के शिखर पर बैठना हो तो नाम जपो बस। तो कलियुग है नामनिष्ठा का समय।

'रामायण'रूपी सद्गुरु रोज हमारे लिए नया सूरज बनकर ऊगता है

मानस-भुवनेश्वर
: 3 :

'मानस-भुवनेश्वर', जिसको केन्द्र में रखते हुए हम और आप मिलकरके संवादी सूर में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक वार्तालाप कर रहे हैं। कुछ आगे बढ़ें। भगवान भुवनेश्वर है। और भुवन तीन भी है, चौदह भी है, कोटि-कोटि भी हैं और जिसकी कोई संख्या नहीं, अनेक भी है। ये चारों संकेत 'मानस' में प्राप्त होते हैं। तो, भुवन अनेक है, लेकिन उसका ईश्वर एक है। कागभुशुंडिजी ने अनेक भुवन में, अनेक ब्रह्मांड में 'उत्तरकांड' के करीब-करीब आख़िरी प्रकरणों में यात्रा की है। लेकिन जिसको यहां भुवनेश्वर कहा गया है राम को वो राम का दूसरा रूप नहीं देखा। तो पहली बात ये बनती है कि भुवन अनेक हैं, लेकिन उसका ईश्वर एक है।

मेरे युवान भाई-बहन, ईश्वर की थोड़ी परिभाषाएं समझ ली जाये कि ईश्वर किसको कहते हैं? अनंत भुवन को एकमात्र ईश्वर माने क्या? पहली सीधी-सादी परख और वो है, जो एक है वो ईश्वर है। गुरु नानकदेव जिसको एक ॐकार कहते हैं। भगवान वेद जिसको 'एकं सद्' कहते हैं। तो पहली परख है, जो एक है वो ब्रह्म है; ईश्वर है। दूसरी ईश्वर की परिभाषा है, जो सर्वभूत में निवास करता है। जैसे कि भगवान 'श्रीमद् भगवद्गीता' में कहते हैं कि 'ईश्वरः सर्व भूतानां।' तो प्रत्येक में जो बिराजमान रहता है वो ईश्वर कहलाता है। इसीलिए यहां भुवनेश्वर की व्याख्या करते हुए गोस्वामीजी ने एक शब्दप्रयोग किया है 'व्यापक।' व्यापक ही सर्वभूतमय हो सकता है, सीमित नहीं हो सकता। और ईश्वर मानी अजित। वो हारता है लेकिन कोई उसको जीत नहीं पाता। ध्यान देना, 'महाभारत' के युद्ध में एक अर्थ में देखो तो प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी कृष्ण को। लगता तो है ये हारता है। लेकिन भीष्म को पूछो तो वो कहेगा, कृष्ण अजित है। तो ईश्वर की परिभाषा में तीन शब्द आते हैं। एक तो ईश्वर वो है जो ब्रह्म है। ईश्वर वो है जो व्यापक है। ईश्वर वो है जो अजित है।

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर।।

तो कहने का मतलब शिव भी-

विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।

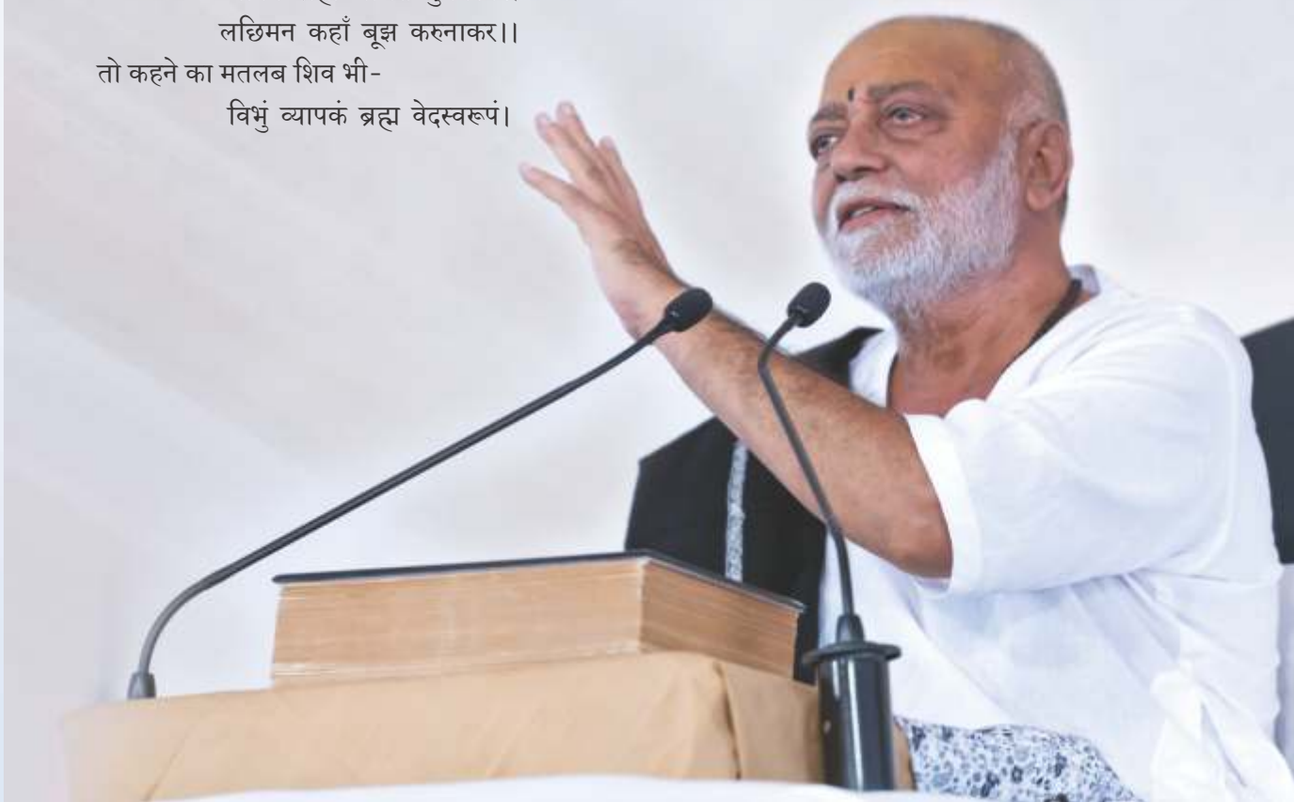

'नमामीश'; 'ईश' मानी ईश्वर। तो कुछ बातें स्मरण में रहे। ईश्वर वो है जो व्यापक है। ईश्वर वो है जो हारता है लेकिन अजित है, अपराजित है। ईश्वर वो है जो आंतर-बाह्य ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। संगीत की भाषा में ईश्वर एक पर्टिक्युलर स्वर; उसका नाम ईश्वर है। ईश्वर वही स्वर। कोई नाम नहीं है ये स्वर का। और एक बात ये भी समझ लीजिए, ईश्वर नाम नहीं है किसी का। राम नाम है। कृष्ण नाम है। शंभु नाम है। ईश्वर किसी का नाम नहीं। ईश्वर सत्तावाचक है। हां, हम समाज में किसी का नाम ईश्वर रख दे ये बात ओर है लेकिन ईश्वर नाम नहीं। ईश्वर संज्ञा भी नहीं। ईश्वर विशेषण भी नहीं। ईश्वर सदा-सदा एक है।

हमारे पास एक बहुत बड़ी संपदा है जिसका नाम है 'ईशोपनिषद।' ईश्वर के नाम से पूरा एक उपनिषद हमारे यहां अवतरित हुआ है 'ईशोपनिषद।' वहां भी कहा गया, 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।' सर्व भूतमय ईश्वर है। ये कोई एक खास स्वर है जो संगीतज्ञों को भी नहीं प्राप्त हुआ। न गायकों को मिला है; न श्रवण करनेवालों को मिला है; न कम्पोझ करनेवालों को मिला है अथवा किसी-किसी को मिल भी गया उसको पता भी नहीं कि ये वो ही ईश्वर है। योगीलोग इसी ईश्वर की खोज में है। इसीलिए संगीत की सीधी-सादी बोली में हम लोग कहते हैं, स्वर ही ईश्वर है। सूर तो पकड़े जाते हैं। ये सा है; रे है; ग है; म है; प है; जो-जो है। इधर से जाओ, उधर से जाओ। सब करामत करो। ये विद्या है, ये बड़ी प्यारी साधना है। ये कथा क्यों हैं? वक्ता के कारण? नहीं। शब्दों के कारण ? नहीं। किसी भाषा और बोली के कारण? नहीं। लेकिन ये कथा करते-करते कहीं वक्ता को भी खबर न हो, श्रोता को भी खबर न हो और ईश्वर मिल जाय! मैंने कल भी इस भुवनेश्वर की नगरी में कहा, पहले भी मैंने ये निवेदन किया कि मेरी कर्मनिष्ठा नहीं रही, मेरी कालनिष्ठा नहीं रही, मेरी एक मात्र निष्ठा रही कथानिष्ठा; हरिनाम की निष्ठा। अब जाये तो जाये कहां? कोई उपाय नहीं। कथा जगाती है। शास्त्र रोज नया होता है। इसलिए आपको सुनने को अच्छा लगता है। मुझे गाने को अच्छा लगता है। मुझे भी पता नहीं होता कि फल क्या होगा? न आपको पता है कि फल क्या आएगा? सुना मैंने कि सूरज रोज ऊगता है वैसे सद्गुरु भी रोज अपने लिए ऊगता है।

कोई ऐसा बुद्धपुरुष का आश्रय हम और आप करे कि जिसके पास ईश्वर हो, कोई खास स्वर हो जिसके पास। जो हमारे लिए रोज नया हो, रोज नूतन हो। सद्गुरु सूरज की तरह रोज हमारे लिए ऊगता है। कथा क्या है? 'रामायण'रूपी सद्गुरु रोज मेरे और आपके लिए नया सूरज बनकर ऊगता है। हमें नहला देता है। हमें विकसित करता है। हमारी महक को सार्वजनिक कर देता है। हमें कृतकृत्य कर देता है। ये सूरज ऊगता है। आप ये तीर्थ में बैठे कभी शांति से तो सोचो, सूरज क्यों ऊगता है? उसका कोई कारण है? कोई हेतु है सूरज को ऊगने का? कल न ऊगे तो हम और आप क्या कर लें? सद्गुरु है क्या? रोज ऊगता हुआ नया सूरज। 'रामायण' क्या है? सद्गुरु है। इसलिए मोरारिबापू को रोज नया लगता है। मोरारिबापू के करीब-करीब श्रोताओं को भी रोज नया लगता है। जो सुनने नहीं आता उसकी दलीलें है कि रोज वो ही की वो ही कथा! तू वो ही का वो ही है! कथा तो रोज नयी है। वर्ना हम उब जाते। आप ये तर्क कर सकते हैं कि सद्गुरु रोज सूरज की तरह ऊगता है तो फिर अस्त क्यों होता है? अस्त इसलिए कि आश्रित का सितारा चमके। सूरज चौबीस घंटे रहे तो कोई चमक नहीं रहती सितारों में। आश्रित को भी झगमगाना है। उसको भी अपने अस्तित्व का भान हो कि हम कोई कम नहीं है। गुरु कुछ समय के लिए ओझल हो जाता है; इसलिए कि उनका आश्रित चमके। एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ हो उसके नीचे छोटा-सा पौधा बो दो तो वो ज्यादा बड़ा नहीं हो सकता क्योंकि विराट की छाया में रहने के कारण वो अपने अस्तित्व को विकसित नहीं कर पाता। इसलिए बड़े-बड़े बुद्धपुरुष भी हमारी तरह हमारे सामने बिलकुल हमारे जैसे हो जाते हैं। अपने रूप को अप्रगट कर देता है ताकि साधक का सितारा चमके।

मेरे भाई-बहन, मेरे कहने का मतलब एक है वो ईश्वर, द्वितीय नहीं। दूजा न कोई। व्यापक है वो ईश्वर। ब्रह्म है वो ईश्वर। हार जाये लेकिन अजित रहे वो ईश्वर। सर्व भूतमय हो वो ईश्वर। आंतर-बाह्य ऐश्वर्य से भरपूर हो वो ईश्वर। व्यापक हो वो ईश्वर। और 'कालहु कर काल।' जो काल का भी काल है वो भुवनेश्वर, वो ईश्वर।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।

करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

कौन ईश्वर? जो 'कालहु कर काल।' इन्सान की एक इच्छा होती है। कुछ इच्छाएं 'मानस' में लिखी हैं। हम गिनते नहीं। हमारी इच्छाएं क्या है कि छोटी-बड़ी क्षुद्र इच्छाएं हैं हमारी! कभी 'मानस' का पारायण करते-करते 'मानस' में कौन-कौन इच्छाएं हैं? और इन इच्छाओं की पूर्ति किससे होगी? उसका एक लिस्ट कभी सोचो। आध्यात्मिक दृष्टि से सोचो, भौतिक दृष्टि से सोचो। भौतिक दृष्टि से हमारी बहुत-सी इच्छाएं ये होती है कि ये ठीक हो जाय; शादी हो जाय बच्चों की; नोकरी मिल जाय; डिग्रियां मिल जाय; फेक्टरी ठीक चले। तनख्वाह ठीक मिले। सब की ये ही इच्छा होती है। आध्यात्मिक इच्छाएं क्या? मेरी व्यासपीठ ने ऐसी कुछ महेच्छाओं को चुना है। किससे ये मनोरथ पूरे होंगे? उस ईश्वर से, जो भुवनेश्वर है, जो 'मानस' का भुवनेश्वर है, जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। और हमारी इच्छायें क्या होती है? हम जानते तो हैं कि ये सब खतम हो जायेंगे, ये नाश हो जायेंगे, फिर भी इच्छा होती है कि हमारा नाश हो? कोई भगवान के पास बैठकर कहता है कि जल्दी मेरा नाश हो? कोई कहेगा नहीं। सब यही मांगेगा कि मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले जा। जानते तो हैं मरेंगे, विनाश ही है; मृत्यु ध्रुव है लेकिन अमरता चाहते हैं हम; शाश्वतपद चाहते हैं हम। और बुरी बात नहीं है। अध्यात्म में ये चाह सराहनीय है, अमरता पाने की चाह। अमरता पाने की चाह यदि ठीक नहीं होती तो ये मृत्यु से अमृत की और हमें ले जा, ये बात उपनिषद कहता ही नहीं।

मरना तो है। शरीर तो जायेगा। माँ के गर्भ में जन्म लिया, बच्चे हुए, बड़े हुए, किशोर हो गए, युवा हो गए, प्रौढ़ हो गए, बूढ़े हो गए; होगा, इसका स्वागत करो। स्वागत करो हर अवस्था का। आदमी को सफेद बाल आते हैं तो अच्छा नहीं लगता, स्वागत करना सीखो। कब तक रंग करते रहोगे? सफेद बाल परिपक्वता की निशानी है। इसका मतलब आप काले करो तो मैं कोई विरोध नहीं करता। मैं तो आपके साथ चर्चा कर रहा हूं। लेकिन सफेद बाल की इज्जत तो है। परिपक्वता है, उज्वलता है, धवलता है, प्रौढ़ता है, समझदारी है। तो आदमी की अवस्था बदलती है। हम स्वीकार नहीं करते। बूढ़ापा का भी एक सौन्दर्य होता है। टागोर का बूढ़ापा देखो; गुरुदेव टागोर; बूढ़ापे का एक अपना गौरव होता है। एक परिपक्वता का परिचय देता है सफेद बाल। तो देह तो जाएगा धीरे-धीरे मृत्यु की ओर। ये जानते हुए भी हम चाहते हैं कि अमरपद प्राप्त हो, अमरता प्राप्त हो, शाश्वती प्राप्त हो।

अब दूसरी महेच्छा तलगाजरडी दृष्टि से। हमारी इच्छा है कि हम ब्रह्मसुख प्राप्त करे; हम स्वान्तः सुख प्राप्त करे; हम निज सुख प्राप्त करे। सब 'मानस' के शब्द है। क्या हमें ब्रह्मसुख नहीं चाहिए? हम सब चाहते हैं कि प्रभु का सुख हमें मिले। जो सुख माँ शतरूपा मांग रही थी 'बालकांड' में। ये ब्रह्मसुख हम सब को चाहिए। एक तो हमारी कामना होती है शाश्वतपद। मर तो जायेंगे। शाश्वती पाकर मरेंगे। तो भुवनेश्वर का नाम लेने से अविनाशी पद की कामना पूरी होगी। दूसरा, हमें ब्रह्मसुख चाहिए। भ्रमित सुख तो हमने बहुत पाया; सपने का सुख तो बहुत पाया; जो केवल कुछ काल के मेहमान थे। भ्रमसुख बहुत पाया। शाश्वत जो ब्रह्मसुख है। उसको पाने के लिए भी उसी भुवनेश्वर का नाम लेना पड़ता है। किस-किस ने लिया? शुक, पहला। शुकदेवजी ब्रह्मसुख का भोगी बने। दूसरे सनकादि सिद्ध; सनकादि सिद्ध महात्मा जितने हुए। मुनि जोगी; मुनिगन, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभंग, आदि-आदि जो-जो मुनि 'मानस' में आप पाओगे वो ब्रह्मसुख के भोक्ता बने हैं भुवनेश्वर के नाम से। और योगी लोग, 'नामप्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।'

तीसरी हमारी अपेक्षा होती है कि पूरी दुनिया हमको प्यार करे अथवा तो ये इच्छा होती है कि जगत पूरा जिसको प्रेम करता हो ऐसी कोई व्यक्ति हमें मोहब्बत करे। ये हमारी अपेक्षा होती है। यहां कोई सांसारिक भाव की बात नहीं है। पूरा जगत जिसको प्रिय समझे ऐसा कोई प्रियतम हमें प्रिय समझे। इसके लिए भी परमेश्वर का ही नाम काम आएगा। एक चौथा मनोरथ। हम सब को प्रेम मारग में, भक्ति मारग में स्वाभाविक इच्छा होती है कि हम शिखर पहुंचे; हमारी भक्ति शिखर पहुंचे। नाम के प्रसाद से प्रह्लादजी भगत शिरोमणि बन गए। केन्द्र में है भुवनेश्वर का नाम। भुवनेश्वर के नाम की कृपा से प्रह्लाद भक्ति में शिखर सर कर गया; प्रेम के उत्तुंग शिखर में बैठ गये। भक्तों में शिरोमणि हो गया। जीव के नाते हमारा ओर एक अध्यात्म मनोरथ होता है कि हमारा स्थान स्थिर हो। हमें कोई चलित न करे। दुनियाभर के पद चलायमान है। रिटायर्ड हो जायेंगे। रिजाईन करना पड़ेगा। मुदतें पूरी हो जाएगी। पद खाली हो जाएगा। हम

कायमी स्थिर नहीं हो पायेंगे। और साधक की ईच्छा है हमारा स्थापन कायम हो। यद्यपि ग्लानि से ध्रुव ने भुवनेश्वर का नाम, हरि का नाम लिया तो फल मिला; मनोरथ पूरा हुआ; अचलता प्राप्त की; स्थिरता प्राप्त की; ध्रुवता प्राप्त की। और भगवान कहते हैं, मैं अपने भक्तों के वश में रहता हूं। भक्तों के आधीन भगवान बन जाते हैं। उनके कारण आते हैं। भगवान भक्तवश है तो हमें भी ईच्छा हो जाय भगवान हमारे वश हो। हम कहे तब दर्शन दे। हम भोग लगाये तो खाए। भगवान हमारे वश में हो जाये। भगवान भुवनेश्वर के पवित्र नाम का जप करके श्री हनुमानजी भगवान राम को अपने आधीन कर देते हैं, अपने वश कर देते हैं। ये सब हमारे मनोरथ है।

तो मुक्त होना है तो भी भुवनेश्वर का नाम। शाश्वती प्राप्त करनी है तो भुवनेश्वर का नाम लो। ब्रह्मसुख पाना है तो भुवनेश्वर का नाम लो। भगवान को प्रिय होना है तो भुवनेश्वर का नाम लो। भक्ति में उच्चपद पाना है? शिरोमणि होना है? भुवनेश्वर का नाम लो। अचल होना है? भुवनेश्वर का नाम लो। श्री हरि को वश करना है? भुवनेश्वर का नाम लो। और मुक्त होना है? तो भुवनेश्वर का नाम।

तो मेरे भाई-बहन, ये अनेक भुवन है। लेकिन ईश्वर एक है। और वो ईश्वर के इससे भी कई-कई अर्थ निकल सकते हैं। तो कल हमने अनंत भुवन, कोटि भुवन, चौदह भुवन और ये त्रिभुवन की चर्चा थोड़ी की। कल की कथा के बारे में एक प्रश्न भी मेरे पास आया है, 'मैं आदर्श पात्र बनना चाहती हूं पर यह तो तभी संभव है जब सामनेवाला अपना किर्दार सही-सही निभाये। अगर मैं सीता बनना चाहूं तो पति को भी राम होना चाहिए। अगर मैं लक्ष्मणा बनना चाहूं तो ससुर को भी कृष्ण होना चाहिए। या फिर कोई ऐसा उपाय बताये कि उनकी प्रतिक्रिया से संपूर्णत: मुक्त होकर अपनी धर्मनिष्ठ चरित्र की रचना कर पाऊं।' जिसको पात्र बनना होता है वो शर्त न रखे। शर्त से हमारी पात्रता कलुषित हो जाती है। पात्र बनना है तो संकल्प करो। सामनेवाला राम बने ना बने, उनकी जिम्मेवारी। और यदि आप में पात्रता आ ही गई तो रावण को भी राम बनना पड़ेगा। किर्दार की शर्त मत करो। ये शर्ती सौदा नहीं हो सकता। ये चालाकी है। ये छटकने की कोशिश है। तुम लक्ष्मणा बन जाओ, ससुर कृष्ण हो न हो छोड़ो। तुम तो बन गए। तुमने तो किर्दार निभाया। कोई ये कह सकता है कि मुझे भगवान मिले बाद में मैं भगत होऊं? ये हो सकता है? तुम भगत हो जाओ फिर भगवान मिलेगा। अरे, भगवान मिलेगा क्या? तू भगत हो जा, फिर भगवान मिले न मिले ये भी तू चिंता नहीं करेगा। मैं भगत हो गया, काफ़ी है। मैंने मेरा किर्दार निभा लिया।

''बापू, कल आपने कहा कि जप करो तो ऐसा महसूस करो कि पाताल में बैठे हो। बापू, पाताल का भी कोई आधार तो होगा? तो उस आधार का भी कोई आधार हो गया।'' पाताल में महसूस कर के भजन करने का मेरा मतलब है गहराई। आपने देखा है कि लोग गुफ़ा में क्यों जाते हैं? ये गहराई का प्रतीक है। गुफ़ा मानी कुछ अन्तर्मुख गहराई की खोज है ये। पाताल मानी गहराई। पाताल में परमात्मा के पैर रहते हैं इसलिए भजन किसी के चरण में बैठ कर करो। 'पद पाताल सिस अज धामा।' भगवान का पैर पाताल में है। भगवान का हृदय पृथ्वी में है। और भगवान का मस्तक आकाश में है। और ये तीन मेरी व्यासपीठ का सत्य, प्रेम और करुणा है। पद सत्य है; परमात्मा का पद। पद सत् है, पादुका सत्य है। पाताल में भजन करने का मेरा मतलब एक तो गहराई। स्थूल रूप में गहराई, आंतरिक गहराई। दूसरा, परम के पद को याद करते हुए भजन करना कि मैं कोई गादी पर नहीं बैठा हूं। मैं आसन पर नहीं बैठा हूं, मैं मेरे गुरुदेव के चरण के पास बैठा हूं। मैं किसी की पादुका के पास बैठा हूं।

आज एक प्रश्न बड़ा प्यारा था, ''बापू, आप 'गुरु', 'सद्गुरु' और 'बुद्धपुरुष' तीन शब्द का प्रयोग करते हैं। फ़र्क क्या है?'' अच्छा प्रश्न है। सुनो, गुरु उसको कहते हैं जो ईश्वर के बराबर हो। गुरु का मतलब है परमात्मा के बराबर। जैसे कबीर ने कहा, 'गुरु गोविंद दोनों खड़े।' एक साथ, एक भूमिका में; उसको गुरु कहते हैं। गुरु और ब्रह्मा साथ बैठ सकते हैं। गुरु और विष्णु साथ बैठ सकते हैं। गुरु और महेश साथ बैठ सकते हैं। गुरु साक्षात् ब्रह्म का पर्याय है। जो मंत्र हम बोलते हैं, बिल्कुल स्पष्ट। मैं मेरी जिम्मेवारी के साथ अर्थ कर रहा हूं। गुरु का मतलब परमात्मा के बराबर लेकिन सद्गुरु का मेरा मतलब है ईश्वर से उपर। ईश्वर नीचे और सद्गुरु उसके उपर है। लेकिन 'बुद्धपुरुष' शब्द यूझ करता हूं तब मैं दोनों के लिए करता हूं। कभी गुरु के लिए भी 'बुद्धपुरुष' शब्द का प्रयोग करता हूं, कभी सद्गुरु के लिए भी। लेकिन इतना याद रखे कि सद्गुरु वो है इसके आगे कोई तत्त्व नहीं है।

''बापू, आपने राजगीर कथा में कहा था कि प्रसाद को भी भिक्षारूप में ग्रहण करे। मैंने अपना प्रयास शुरू कर दिया है। थाली में जो होता है यथासंभव सब को मिला देता हूं। बापू, मेरे लिए दुआ करे कि इसमें सफ़ल होऊं।'' अच्छा है, ठीक है लेकिन यहां भाव और मानसिकता प्रधान है, क्रिया प्रधान नहीं है। तुम सब मिला दो अच्छा है, ठीक है लेकिन ये क्रिया है कि बापू ने कहा भिक्षाभाव से लो तो मूंग की दाल का शीरा भी मिला दूं, ये भी मिला दूं। ये अच्छी बात है। लेकिन ये क्रिया है। मानसिकता बनाओ कि मैं सब स्वाद को मिलाकर एक महाप्रसाद का नया स्वाद अनुभव करूं।

बिधि प्रपंच गुण अवगुण साना।

ये मिश्रित है जगत। इसमें गुण भी होते हैं, अवगुण भी। लेकिन इनके कारण कौन है? किसी में भी आप गुण देखो तो उनके कारण क्या है? अपने गुण है तो इनके कारण क्या है? उसके हेतु क्या है? दस हेतु है उसके। शायद इन इस तरह सोचते-सोचते ईश्वर पकड़ जाय, वो स्वर हमें कहीं मिल जाय। इसलिए ये प्रामाणिक प्रयत्न है।

आगमाप: प्रजा: देश कालं कर्म च जन्मं च।
ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवं।
- श्रीमद् भागवत।

'भागवत' में व्यक्ति के गुण के दस कारण बताये हैं। हमारे गुणों का दस कारण। उनका पहला कारण भगवान शुकदेवजी कहते हैं, व्यासप्रभु कहते हैं, पहला कारण है आगम:। हमारे गुण का कारण हमारा शास्त्र है। हमारे और आप के अच्छे गुण होंगे तो कारण 'रामायण' है; कारण 'भागवत' है। आप में अपरिग्रह है? आप में अहिंसा का गुण है? आप में अचौर्य का गुण है? समझना आपका ये गुण का हेतु जैन आगम है; आगम, शास्त्र। आप परस्पर भाईचारा रखते हैं, हिंसा में आपकी रुचि नहीं है, परस्पर मोहब्बत ये गुण पवित्र कुर्रान का है। अपना शास्त्र अपने गुण का कारण है। 'आप:' का दूसरा अर्थ है अन्न-जल। यद्यपि आप का अर्थ होता है जल। लेकिन जल से अन्न पैदा होता है। इसलिए अन्न-जल पूरे हो गये। हमारे गुण का कारण हमारा अन्न और जल है। हम कैसा पीते हैं और कैसा खाते हैं, उस पर हमारी क्वोलिटी डिपेन्ड करती है। स्वादिष्ट और सात्त्विक जो परमात्मा को भोग में रख दिया जाय। तुलसीपत्र डालकर ऐसा भोजन हमारे गुण का कारण बनता है। और ऐसा जल। हम क्या पीते हैं? ज्यादा नहीं कहना है मुझे! देश में अच्छा एक सीलसीला चला है। कितना सफल हो मुझे खबर नहीं लेकिन एक के बाद एक स्टेट पूर्णत: नशाबंधी के कदम उठा रहे हैं। ये अच्छी निशानी है। गुजरात में तो है ही। लेकिन चलता भी है! नहीं चलता ऐसा हम नहीं कह सकते। लेकिन कानून की दृष्टि से दारूबंधी है। बिहार में ओलरेडी डिकलेर कर दिया है नीतिशजी ने। और आज या कल के अखबार में मैंने पढ़ा, जयललिता-अम्मा उसने भी कहा, एक झटके से तो मैं तामिलनाडु में नशाबंधी नहीं कर सकती लेकिन धीरे-धीरे मेरी कोशिश है कि नशाबंधी हो। एक-एक स्टेट आगे आ रहे हैं। क्योंकि हम क्या पीते हैं, 'भागवत'कार कहते हैं उस पर हमारे गुण का एक कारण है। 'आगमोप प्रजा:' प्रजा हमारे गुण का कारण है। प्रजा का अर्थ यहां है संगत, सोबत, कंपनी, हमारी सोसायटी हमारा गुण का कारण है। हम किसके संग में रहते हैं वो हमारे गुण का कारण बनती है।

'रामायण'रूपी सद्गुरु रोज मेरे और आपके लिए नया सूरज बनकर ऊगता है। हमें नहला देता है। हमें विकसित करता है। हमारी महक को सार्वजनिक कर देता है। हमें कृतकृत्य कर देता है। ये सूरज ऊगता है। आप ये तीर्थ में बैठे कभी शांति से तो सोचो, सूरज क्यों ऊगता है? उसका कोई कारण है? कोई हेतु है सूरज को ऊगने का? कल न ऊगे तो हम और आप क्या कर लें? सद्गुरु है क्या? रोज ऊगता हुआ नया सूरज। 'रामायण' क्या है? सद्गुरु है। इसलिए मोरारिबापू को रोज नया लगता है। मोरारिबापू के करीब-करीब श्रोताओं को भी रोज नया लगता है।

रहही न नीच मते चतुराई।

आदमी अपने संग को सुधारे। मैं युवान भाई-बहनों को खास कहूंगा। इसमें धर्म की चर्चा नहीं है, तिलक-छाप नहीं है। ये जीवनोपयोगी सूत्र है। जीवन बनाना है? प्रजा ये तीसरा लक्षण है। संग; 'रामचरित मानस' में लिखा है, यदि संग ठीक न हो तो वैराग्य भ्रष्ट हो जाता है।

संग तें जती कुमंत्र ते राजा।

मान ते ग्यान पान तें लाजा।।

युवान भाई-बहनों, आप मौज करो। अच्छे कपड़ें पहनो, अच्छा-अच्छा खाना खाओ, एन्जोय करो, ये पृथ्वी बड़ी हमारे लिए परमात्मा ने दी है। आनंद-मौज करो लेकिन संग अच्छा रखो। ताकि हमारा आनंद गुणमयी हो, सत्यमयी हो। प्रजा का अर्थ यही समझना होगा। 'आगमोप प्रजा देश:।' देश, हम किस स्थान में रहते हैं, वो भी हमारे गुण का कारण बनता है। स्थान की बड़ी महिमा है। ऐसी जगह पर आदमी रहने लगता है तो उसके अगल-बगल का परिसर, उसकी मानसिकता पर असर कर देता है। देश मानी स्थान। काल, समय, आदमी का समय खराब होता है। और आदमी श्रद्धा गंवा देता है। तो समय उनमें कई दुर्गुणों का जनम करा देता है। क्योंकि श्रद्धा हिल गयी कि हमने इतना भरोसा रखा था हमारी इतनी श्रद्धा, हमारा कुछ नहीं हुआ! हमनें 'रामायण' के इतने पाठ किये। हमनें ये किया। पाठ का फल सब ठीक हो जाय ये नहीं। पाठ का दो ही फल है। 'रामायण' का पाठ करो नवरात्रि में। दो ही फल-पवित्रता और प्रसन्नता। इसके अलावा और तीसरा फल नहीं। आप पाठ करो, प्रसन्नता आये। आप पाठ करो, अंत:करण पवित्र हो जाय। और इससे बड़ा फल हो भी नहीं सकता।

प्रजा, देश, काल, कर्म; हमारे कर्म हमारे गुण का कारण है। जो हम कर्म करते हैं। दोनों अरसपरस है। क्योंकि आदमी गुण के कारण ऐसा कर्म करता है। और कभी-कभी आदमी कर्म करते-करते ऐसे गुणवाला हो जाता है। और जन्म, हमारे गुणों का कारण एक जन्म है। अच्छे कुल में जन्म हुआ है तो हमारे गुणों का उजागर होना स्वाभाविक है, प्रकट होता है। जन्म भी कारण है। 'ध्यानम्'; हमारी एकाग्रता हमारे गुण का कारण है। हम कितने स्थिर है मानसिक रूप से ये हमारे गुण का कारण है। धीरज गुण है। और ध्यान करनेवाला, शांत बैठनेवाला, एकांतप्रिय, मौनप्रिय, ऐसा उसका ध्यान गुण का कारण बन सकता है। 'मंत्रोथ'; आप किस मंत्र का जप करते हो वो तुम्हारे गुण का कारण है। कोई तंत्र के मंत्र, कोई मेली विद्या, ऐसे मंत्र करोगे तो तुम्हारे गुण ऐसे होते हैं। कई लोग नहाते नहीं है, कई लोग ऐसे-ऐसे गंदे रहते हैं, क्योंकि ऐसे मंत्र जपते हैं! मैं जानता हूं इसलिए कहता हूं। उसकी मानसिकता बन जाती है। उसकी साधना के पीछे कोई मेलें मंत्र पढ़े हैं। मेली विद्या! जिसको विद्या कहना ही ठीक नहीं। सीधी अविद्या कह दे। तो हमारे मंत्र हमारे गुण का कारण बनता है। 'संस्कारो'; हमारे समाज के संस्कार। हमारे कुल के संस्कार। हमारे परिवार के संस्कार। ये दस संस्कार 'श्रीमद् भागवत' कहते हैं। 'दशैते गुणहेतव:।' और ये दसों हमारे अवगुण के भी हेतु है। वो भागवतकार ने नहीं लिखा। वो ही वस्तु हमारे अवगुण भी बन सकती है।

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाई कुजोग सुजोग।

होहि कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग।।

यही चीज तुलसी कहते हैं, बदलने से बदल जाती है। आगम; गैर अर्थ हमारे दुर्गुण का कारण बनता है। आजकल दुनिया में शास्त्र की जो कट्टरता चलती है वो हमारे हिंसारूपी दुर्गुण कारण बन बैठी है। वो ही आगम, वो ही शास्त्र, हमारे दुर्गुण का कारण बन जाता है। क्योंकि तथाकथित लोग, जिन्होंने हमें ऐसे-ऐसे अर्थ पकड़वा दिए, हमारे पर कुछ प्रक्षेपित कर दिया। जो खुद नहीं समझे थे वो हमको समझाने की कोशिश की! आप, जल, वायु हमारे गुण का भी कारण बन सकता है। दुर्गुण का भी कारण बन सकता है। अभक्ष करेगा, तामसी हो जाएगा। न पीने की चीज पीएगा, स्वाभाविक है, उसके कुछ समय के लिए वो ठीक नहीं होगा। प्रजा; जैसे साधु की संगत गुण का कारण बनती है, असाधु की संगत अवगुण का कारण बन जाती है। देश; अच्छे स्थान में रहना ये गुण का कारण भी हो सकता है। कोई ऐसी जगह पर हम रहेने लगे तो दुर्गुण को भी प्रसव दे सकते हैं। काल-समय भी दुर्गुण को निर्मित कर सकता है और कर्म और जन्म दोनों भी। यदि कर्म ठीक नहीं है तो ऐसे गुण स्वाभाविक है। ऐसे ही ध्यानम्; एकाग्र तो हम बहुत होते हैं, लेकिन दूसरे का द्वेष करने में हमारे जैसी एकाग्रता किसी की नहीं! लेकिन ये ध्यान दुर्गुण का कारण बन जाता है। ईश्वर में भी हम इतने एकाग्र नहीं होते जितने दुश्मन में होते हैं! मेरा उसने बिगाड़ा था! उस समय तो लयलीन हो जाते। वो ध्यान दुर्गुण का हेतु है, अमर्ष का हेतु है, बुराई का हेतु है। 'मंत्रोथ'; अभी मैंने कहा, कोई मेले मंत्रों आदमी की तामसिकता का कारण भी बन सकता है। और आखिर में संस्कार भी दुर्गुण का कारण। तुलसीदासजी संदर्भ भेदे सभी बातों 'मानस' में कहीं न कहीं आरोप लगा देते हैं। लेकिन ये बात 'भागवत' की है। न हो तो किसी शास्त्र की है।

कल की कथा के प्रवाह में हम प्रभु के नाम की महिमा और नाम महाराज की वंदना कर रहे थे। थोड़ा आगे बढ़ें। तुलसीदासजी ने लिखा है कि ये रामकथा सबसे पहले 'मानस' के रूप में शिव ने रचा। और अपने हृदय में यानी मानस में रखा। और नाम रखा 'रामचरित मानस।' योग्य समय पर ये कथा शिव ने पार्वती को सुनाई। फिर ये रामकथा बाबा कागभुशुंडि को प्राप्त हुई। और भुशुंडि से गरुड ने प्राप्त की। उसके बाद ये रामकथा धरती पर यानी बिलकुल मेदान में सपाट भूमि पर आयी प्रयाग में जहां याज्ञवल्क्य महाराज ने ये कथा भरद्वाजजी को सुनाई। और इसी परंपरा में गोस्वामीजी कहते हैं, मैंने वराहक्षेत्र में मेरे गुरु के चरणो में बैठकर ये कथा सुनी। कृपालु गुरु ने बारबार मुझे कथा सुनाई। और संवत् १६३१ रामनवमी के दिन अयोध्या में इस 'रामचरित मानस' का प्रकाशन हुआ। तुलसी ने अपने ढंग से 'रामचरित मानस' के चार घाट बनाये।

तुलसी कथा का आरंभ करते हुए हम सबको लिए चलते हैं तीरथराज प्रयाग में जहां पूर्णकुंभ में सब इकठ्ठे हैं। कल्पवास करके सब जाने लगे तब याज्ञवल्क्य महाराज के चरण पकड़कर भरद्वाजजी जिज्ञासा करते हैं कि महाराज, मुझे रामतत्त्व का बोध कीजिए कि राम क्या है? याज्ञवल्क्यजी महाराज भरद्वाजजी को निमित्त बनाकर हमारे लिए रामकथा का प्रवाह शुरू करते हैं। और याज्ञवल्क्य ने जब कथा शुरू की तब पहला प्रसंग शिवचरित्र का उठाया। तो पूछी कथा राम की, पहले सुनाया शिवकथा। हे भरद्वाजजी, एक बार के त्रेतायुग में भगवान शिव कुंभजऋषि के आश्रम में गए कथा सुनने के लिए। संग-संग दक्ष कन्या, शिव की धर्मपत्नी सती भी गई। कुंभज के आश्रम में आये तो कुंभज ने जग के माता-पिता को अखिलेश्वर समझकरके सती और शिव की पूजा की। ब्रह्मलीन पंडित रामकिंकरजी महाराज का ये अर्थ है कि कुंभजजी ने जब पूजा की तो शिव ने बहुत अच्छा अर्थ निकाला कि वक्ता कथा गायेगा लेकिन कितना सरल है! कितना उदार है! सती ने गलत अर्थ कर लिया कि ये आदमी तो हमारी पूजा करने लगा! ये क्या खाक कथा सुनायेगा? सती बुद्धिप्रधान व्यक्ति है। कथा शुरू हुई। भगवान शिवजी परमसुख मानकर कथाश्रवण करते हैं। सती ने सुना कि नहीं वो नाम नहीं लिखा है।

दंडकवन से पसार होते हैं शिव और सती। वर्तमान त्रेतायुग का रामावतार था। रावण सीता का अपहरण कर गया। प्राकृत व्यक्ति की तरह रोते हुए प्रभु सीता की खोज में थे। लक्ष्मणजी ढाढ़स दे रहे थे। उसी समय शिव और सती वहीं से निकले। अपने ईष्ट भगवान राम की लीला देखकर, दूर से रामजी को 'हे सच्चिदानंद, हे जगपावन' कहकर शिव ने प्रणाम किया। सती के मन में संदेह प्रगट हुआ कि ये कोई ब्रह्म है क्या? ये तो रो रहा है! भगवान शंकर समझ गये। कहते हैं कि देवी, संदेह न करो, आपका नारी स्वभाव है। जिसकी कथा हमनें कुंभज के आश्रम में सुनी। जिसकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई। ये मेरे इष्टदेव भगवान राम है। देवी, ये प्राकृत नरलीला है। सती को उपदेश नहीं लगा। शिवजी ने कहा, आपके मन में रामतत्त्व के प्रति संदेह हुआ है तो आप जाकर राम की परीक्षा करो कि ब्रह्म है की कुछ ओर? सती बौद्धिक होने के कारण सीता का रूप ले कर गई। प्रभु ने मर्यादा से जब देखा तो सती को सीता के रूप में पाया और शिव कहां है? आप अकेली क्यों घूमती है? ऐसा प्रश्न किया। सती पकड़ी गई! कोई जवाब न दे पायी। सती को समझ में आ गया कि मैंने गलत कदम उठाया है लेकिन अब तो चीडिया चूग गई खेत! शंकरजी ने हंसकर कुशलता पूछी। सती झुठ बोलती है कि मैंने कोई परीक्षा नहीं की। भगवान ने ध्यान में देख लिया। सीता तो मेरी माँ है। अब सती से मैं सांसारिक संबंध कैसे रखूं? और शंकर राम की प्रेरणा से संकल्प करते हैं, जब तक सती का ये शरीर रहेगा, मेरी और उसकी कोई भेंट नहीं। शिवजी समाधि में बैठ गये। सत्तासी हजार साल के बाद भगवान शिव जागते हैं। सती सन्मुख जाती है और भगवान शिव उसकी पीड़ा कम हो इसलिए विषयांतर करके कोई न कोई रसिक कथा सुनाने लगते हैं।

मेरे लिए 'रामचरित मानस' की नव दिन की महफ़िल एक 'मानस-मुशायरा' ही है

मानस-भुवनेश्वर
: ४ :

बाप! हम सब मिलकर संवाद के रूप में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं 'मानस' को केन्द्र में रखते हुए। और इस कथा का केन्द्रबिंदु है, 'मानस-भुवनेश्वर।' ईश्वर एक ही है लेकिन जैसे वेद में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' इस न्याय से अनेक एंगल से, अनेक विधाओं से मनीषिओं ने, ईश्वरतत्त्व का दर्शन किया है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि 'रामचरित मानस' में सब से पहले जहां 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग हुआ है वो 'कवीश्वर' है-

वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।

सब से पहले 'रामचरित मानस' कवि को ईश्वर कहते हैं। ये बड़ी अद्भुत और बड़ी चोटी की बात है मेरी समझ में। कवि ईश्वर है। जैसे कि आदि कवि वाल्मीकि ईश्वर है। जैसे कि अनादि कवि भगवान शिव ईश्वर है। जैसे कि भगवान व्यास ईश्वर है। ये तो अनादि से स्मरण कर रहा हूं लेकिन कोई भी कवि समझदार के लिए कवीश्वर है। चाहे बिलकुल प्रसिद्ध न हो ऐसा शायर भी, ऐसा सर्जक भी, ऐसा कवि भी मेरी समझ में ईश्वरत्व लिए हुए है। मेरे लिए 'रामचरित मानस' की नव दिन की महफ़िल एक 'मानस-मुशायरा' ही है। फ़र्क क्या पड़ता है? चाहे धर्म का नाम दो या चाहे कोई भी नाम दो। फ़र्क क्या पड़ता है? पहुंचना तो वहीं ही है।

तो, गोस्वामीजी शुरू करते हैं कवीश्वर से। कवि परमात्मा की विभूति है।-'भगवद्गीता।' ईश्वर का एक पर्याय, सगोत्री शब्द 'कवि' है। इसीलिए व्यास को हमारे शास्त्रकारों ने, संस्कृत मनीषिओं ने कहा है, 'अचतुर्वदनोब्रह्मा।'जैसे ब्रह्मा चार मुखवाला होता है लेकिन व्यास चार मुख न होते हुए भी ब्रह्मा है। जहां

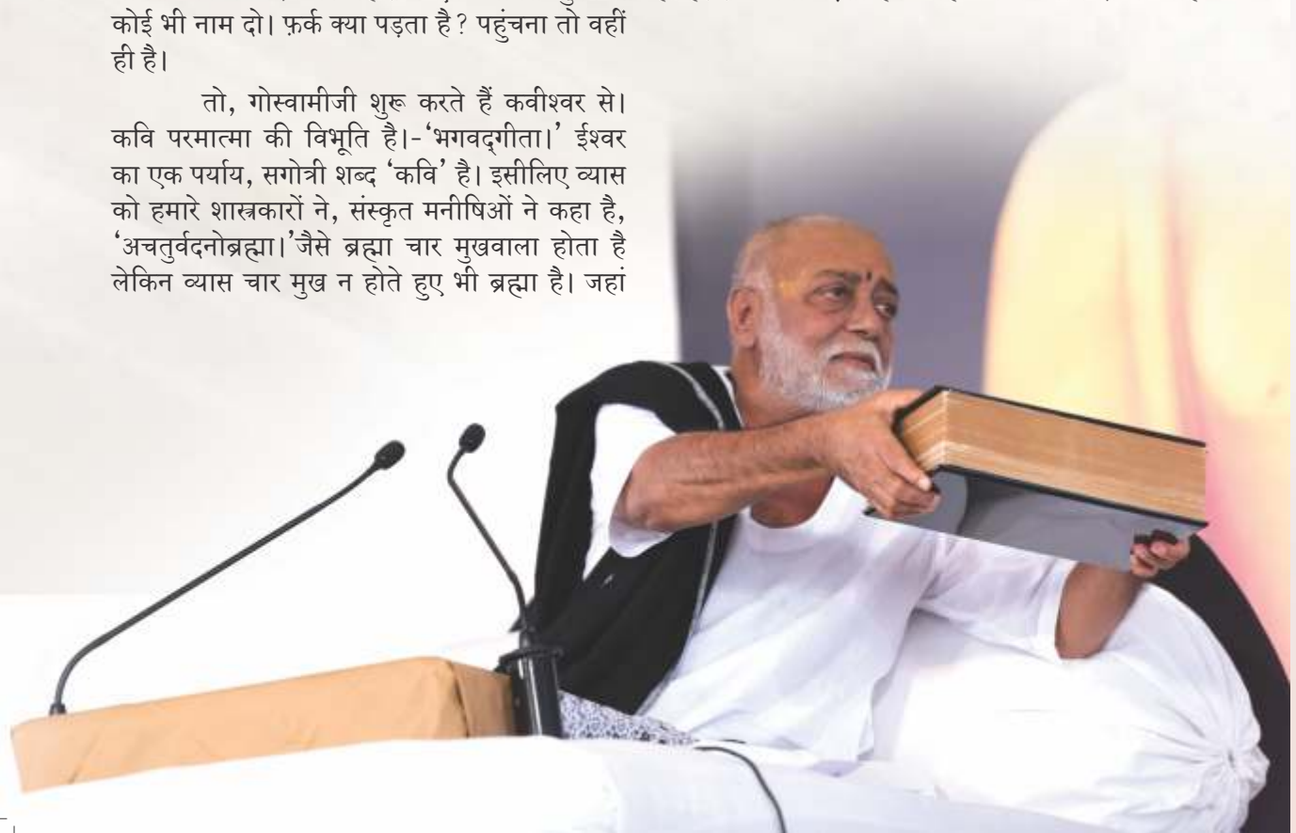

शुभ मिले, सब चौपाईयां है। सब मंत्र है। तो कवीश्वर, कपीश्वर, अखिलेश्वर, रामेश्वर, भुवनेश्वर खोजो 'मानस' में। और शास्त्र की खोज कैसी मानी जाती है? बहुत पर्वतों के बीच में राय का दाना खोजना! शायद दुर्लभ तो नहीं है लेकिन दुर्गम तो जरूर है; अगम है। ईश्वरत्व इस पूरे संसार में से खोज लेना, चाहे वो कवीश्वर हो, कपीश्वर हो जो भी हो। तो आप अपने ढंग से भी 'मानस' अंतर्गत इस ईश्वरत्व खोज करें।

मेरे पास आज कई ऐसी जिज्ञासाएं भी है। एक उडीसा के युवक ने पूछा है कि 'बापू, मैं उडीसा का एक युवा छात्र हूं। कल आपने कहा कि सफ़ेद बाल प्रौढ़ता की निशानी है। लोग बाल काले करते हैं। मैं सत्ताईस साल का हूं लेकिन मेरे बाल अभी से सफ़ेद होने लगे हैं। मेरा क्या कुसूर? मैं क्या करूं? असमंजसता में हूं।' आप सफ़ेद बाल हो जाये तो न काला करे ऐसा कहने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मेरे कहने का मतलब ये है कि सफ़ेद बाल की भी अपनी एक सुंदरता होती है। इतना ही कहना है। इससे ज्यादा कुछ नहीं। आप जरूर करे। युवानी में बाल सफ़ेद होने लगे तो आप कर सकते हैं, भाई-बहन। युवानी में क्या? साठ साल के बाद भी यू केन! ये आपकी स्वतंत्रता है। मैं उसमें बाधा क्यों डालूं? स्वतंत्रता जब छिन ली जाती है और दासता प्रदान की जाती है तब देश में और व्यक्ति में गरीबी का जन्म होता है। आप कभी सोचिएगा। दरिद्रता क्यों है संसार में, उसके सात कारण है। और 'मानस' में लिखा है-

नहि दरिद्र सम दुःख जग माही।
संत मिलन सम सुख जग नाही।।

'मानस' स्वीकार करता है कि दारिद्र्य के समान कोई दुःख नहीं है। और व्यक्ति के जीवन में, परिवार के जीवन में, समाजजीवन में, राष्ट्रजीवन में, वैश्विक परिसर में दरिद्रता का जन्म होता है सात कारणों से। इस में पहला कारण है दासता। परतंत्रता दरिद्रता का कारण बनती है। कविवर टागोर ने 'गीतांजलि' में एक कविता लिखी, 'स्वतंत्रता का स्वर्ग।' परतंत्रता दरिद्रता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता होनी चाहिए। दूसरा कारण दरिद्रता का बताया हैं श्रम का अभाव। दारिद्र्य को पैदा करती है श्रम विरति। कबीरसाहब कहते हैं, 'कह कबीर कुछ ऊद्यम कीजै।' 'गीता' में भगवान कृष्ण कहते हैं, 'युद्धायकृतनिश्चय'; 'तू पुरुषार्थ कर।' तीसरा कारण है, आदमी में श्रम करने की क्षमता है, करना भी है, लेकिन उपकरण का अभाव, संशाधन का अभाव दरिद्रता का कारण बन सकती है। एक आदमी को खेती करनी है लेकिन उनके पास हल नहीं है, उनके पास बैल नहीं है, उसके पास जमीन का टुकड़ा नहीं हैं! अच्छा किया था महामुनि विनोबा भावे ने कि भूदानयज्ञ चलाया। और विश्ववंद्य महात्मा गांधीबापू ने भी श्रम को यज्ञ का दर्जा दिया; श्रमयज्ञ। चौथा कारण है दरिद्रता का खुद की मूढ़ता। आदमी की अपनी मूढ़ता। 'हरि करे सो होय', ये बिलकुल सत्य है लेकिन पूर्ण शरणागतों का सत्य है, त्रिशंकुओं का सत्य नहीं है ये। पूर्ण शरणागत है उनके लिए तो-

आ अहीं पहोंच्या पछी बस एटलुं समझाय छे,
कोई कंई करतुं नथी, आ बधुं तो थाय छे।

गुजराती शे'र है राजेन्द्र शुक्ल का। लेकिन ये पूर्ण शरणागतों के लिए है; हमारे जैसों के लिए नहीं है। इस सूत्र की आड में मूढ़ता को पोषे ना। पांचवां कारण, व्यक्ति में बहुत शक्ति है लेकिन ये शक्ति कुसंग के कारण क्षीण होती जा रही है। क्षीणता के कारण वो निर्बल होता है। निर्बलता फिर दरिद्रता को पैदा करती है। छठ्ठा कारण है, आदमी का अपना अहंकार। 'हमें कुछ नहीं हो सकता! हम बलवान है!' अभिमान दारिद्र्य पैदा करता है, ध्यान देना। दरिद्रता का सातवां और आखिरी कारण वो है कोई परमतत्त्व की उपासना की रहितता। आप किसी भी मजहब के हो क्या फ़र्क पड़ता है? लेकिन किसी परमतत्त्व के साथ जुड़ते रहना। यदि आंतर्-बाह्य दोनों दरिद्रता से मुक्त रहना है तो। उडीसी युवान, सत्ताईस साल में आपके बाल सफ़ेद होते हैं और आपको अच्छा नहीं लगता तो आप जरूर काले करे। मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि बूढ़ापे का भी एक अपना सौंदर्य है, अपनी गरिमा है। 'रामचरित मानस' में तो सफ़ेद बाल की जो महिमा गाई है, शायद इस तरह किसी ओर ने गाई हो! तुलसी कवीश्वर हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, वर्षाऋतु का बूढ़ापा शरद ऋतु है। बूढ़ापा आखिरी अवस्था में आता हैं ना? वर्षाऋतु पूरी हुई 'किष्किन्धाकांड' में और शरद ऋतु आई तो तुलसी कहते हैं, ये वर्षा की उत्तरावस्था है और तुलसी ने इस शरद ऋतु जो वर्षा का बूढ़ापा है उसको 'परम सुहाई'

कहा है। ये मैं नहीं कहता, मेरा कवीश्वर कहता है-

बरषा बिगत सरल रितु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई।।
फूलें कास सकल महि छाई।
जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई।।

तुलसी कहते हैं, हे लक्ष्मण, वर्षा ऋतु गई और शरद ऋतु आई और ये 'परम सुहाई।' शरद मानी वर्षा का बूढ़ापा। और बूढ़ापे को मेरे गोस्वामीजी सुंदर कहते हैं, 'परम सुंदर' कहते हैं। और शरद ऋतु में आप देखियेगा, सफ़ेद फूल से धरती छा जाती है। पूरे बाल सफ़ेद हो गये! मानों वर्षा की ये वृद्धावस्था है और शरद में फिर अन्न पकता है। वृद्धावस्था ये परिपक्वता का परिचय है। आप जरूर काले बाल करिए। लेकिन सफेद बालों की आलोचना न करिए।

तो, मैं बार-बार कह रहा हूं कि आप जरा भी ऐसा न समझे कि हम काले बाल करें और बापू देख ले तो? मेरा काम तुम्हारें बाल देखने का नहीं है! मेरा काम तुम्हें बाल-बाल बचाना है! और बाल क्या है? जुल्फ़ें क्या है? रहस्यों का झूंड। कौन उसको सुलझा पाया है इस विश्व में? इसीलिए सूफीओं में परमात्मा को प्रेयसी कहकर उनके रहस्यों को जुल्फ़ें के साथ उसको जोड़ा है। ये तेरी जुल्फ़ें है। फिर पारसा जयपुरीसाहब का शे'र मुझे याद आ रहा है-

उलझनों में खुद ऊलझकर रह गये वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई जुल्फ़ें को सुलझाने गए।

वेदों ने कहा, 'नेति नेति'; उसको सुलझाया नहीं जायेगा। ये रहस्य है, ये मिस्ट्री है। और मुझे बहुत प्यारा शे'र याद आ रहा है-

इससे बढ़कर क्या मिलती हमें दाद-ए वफ़ा,
हम तुम्हारें नाम से दुनिया में पहचाने गये।।

सूफ़ीवाद में जुल्फ़ें को खुदा का रहस्य माना है। तो बाप! जरूर आप बाल रंगे। कोई न करते हो तो भी शुरू कर दे! रंगवालों का धंधा चले! मैं कोई विज्ञापन के लिए यहां नहीं हूं! आप अपनो को सजाना जरूर। तुलसी ने छूट दी है।

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

जैसे संसार में चौदह भुवन है, वैसे 'रामायण' में चौदह भवन भी है। चौदह भवन में भी राम रहते हैं। लेकिन ये भवन कैसा होना चाहिए ये एक विशुद्ध विज्ञान विशारद वाल्मीकि का ये निवेदन है। ये भुवनों का रहस्य भी आये दिन कोई वैज्ञानिक ही खोलेगा। चाहे वो मुनि हो, फ़कीर हो, बाह्य सायन्टिस्ट हो या भीतरी सायन्टिस्ट हो। लेकिन इन रहस्यों का उद्घाटन तो कोई वो ही करेगा। और 'अयोध्याकांड' में आप जानते हैं, वाल्मीकिजी को रामजी ने पूछा कि हमें चौदह साल वन में रहना है तो हे महात्माजी, हमें बताईये, हम किस जगह पर कुछ काल निवास करे? उसी समय वाल्मीकिजी राम को 'चौदह भवन' दिखाते हैं। वैसे 'चौदह भवन' भी 'मानस' में है, और 'चौदह भुवन' की तो ये बात ही चल रही है 'भुवनेश्वर।' ध्यान देना, ये 'रामायण' कितना प्रेक्टिकल है! लिखा है कि जो स्वाद ले, अच्छा भोजन करे; उपवास करके टूट नहीं जाने का है। व्रत आत्यंतिक न हो। और मैने जहां तक देखा है, जो बहुत उपवास करते हैं वो मुस्कुराते नहीं है! और मेरी परिभाषा में तो मुस्कुराना ही मुक्ति है। महोब्बत करो दुनिया से।

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें और होती है।

- राज कौशिक

कवि कवीश्वर है। वेद के शिखर 'बृहदारण्यक उपनिषद' में ऐसा लिखा है-

वाचं धेनुमुपासित तस्यात् चत्वार: स्तन:।

वहां लिखा है कि वाणी गाय है। और उसके चार थन है जिससे दूध निकलता है। लेकिन वेद ने ये चार स्तन कौन ये नहीं गिनाया है। फिर पर्वत की गिरिमाला से राय खोजनी पड़ती है कि वाणी के चार स्तन कौन है? तो वाणी चार प्रकार की होती है। वैदिक वाणी तो हम जानते हैं परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी। वैखरी उसको कहते हैं जो थोड़ी भीतर से बोली जाय; कंठ से निकले। उसके बाद पश्यन्ति। केवल बोलना नहीं, जाना, देखा। ऋषिमुनिओं ने जो कहा है, फ़कीरों ने जो कहा है, देखते कहां है? निझामुद्दीन ओलिया बैठे हैं। मुझे बहुत प्यारे लगते हैं निझामुद्दीन। खबर नहीं क्यों? मैं निझामुद्दीन ओलिया के वहां गया माथा टेकने तो वहां तो संगीत चलता ही रहता है। मैं गया, तो मैं क्या सुनाऊं? मैं चुपचाप बैठा था। मैंने निझामुद्दीन को दो चौपाई सुनाई। मन में गुनगुनाई ये दो चौपाई जो अजमेर के 'गरीब नवाज' के पास मेरी कथा का सब्जेक्ट था, 'मानस-गरीबनवाज।'

गई बहोर गरीब नेवाजू।
सरल सबल साहिब रघुराजू।।

मेरे गोस्वामीजी राम को गरीब नवाज कहते हैं। कहां भेद है? कौन ये भेद पैदा कर रहा है? सभी सयाने एक मत। किसीने झमझम कह दिया, किसीने गंगा कह दिया। क्यों लड़ते हो? क्यों मरते हो? तो बैठे थे निझामुद्दीन। सायंकाल का समय था। अवसर देखकर अमीर खुशरो आता है। पूछता है कि बाबा, कभी-कभी मैं आपको कोई वक्त साधना की-बंदगी की बात पूछता हूं तो आप जवाब नहीं देते हैं; देते हैं तो देर से देते हैं और जब देर से देते हैं तो पहले मैं देखता हूं, आपकी आंखे नम हो जाती है। मेरा कोई कुसूर तो नहीं है? आइंदा पूछना बंद कर दूं। मेरा पीर रोये ये मुझे अच्छा नहीं लगता। क्या जवाब दिया है साहब! 'अमीर, बेटे! मुझे जवाब देना है ना बेटा, मैं वो वैखरी से नहीं दे सकता। क्योंकि तू पहुंचा हुआ है कुछ। तुझे जब भी मैंने जवाब दिया बैटा, मैं पश्यन्ति वाणी से तुझे जवाब देता हूं। और पश्यन्ति मानी देखना। और जब मुझे देखना होता है तो मुझे चश्में लगाने पड़ते हैं। और ये आंसू ही मेरे चश्में हैं। जब मेरी आंख डबडबा जाय तब मुझे दिखने लगता है। ये चार प्रकार की वाणी। एक वाणी केवल जीभ से बोली जाती है, वैखरी। संसार में यूज़ की जाती है। दूसरी बानी जरा भीतर है, गहन है, जो कंठ से बोली जाये। तीसरी बानी है पश्यन्ति। आंखों देखा अहवाल। भारतीय दर्शन में उत्तम आखिरी बानी का नाम है परा।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी। वेद जिस वाणी को गाय कहता है उनके ये चार स्तन है। चार ओर स्तन है-स्वधा, स्वाहा, षट्कार, वषट्कार। ये वैदिक आंचल है। ये बड़ी गहरी व्याख्या हो जाएगी, छोड़ो! लेकिन बानी के चार स्तन यदि आपकी दुआ से, गुरुकृपा से मुझे कहने हो तो ये चार आंचल तलगाजरडी भाषा में क्या कहेंगे? ये चार स्तन कौन है? एक है, गुरुबानी। अपने उस्ताद की बानी, अपने पीर की बानी, अपने बुद्धपुरुष की बानी। उसको मेरी व्यासपीठ विनम्रता से कहना चाहेगी, एक आंचल है गुरुबानी। ये चार बानी जो

है वो कभी दूध देना बंद नहीं करती है, वो निरंतर दूध देती है। दूसरी बानी को तलगाजरडी आंखें कहती है, 'आकाशबानी।' आकाशबानी का मतलब जो शास्त्रों में आता है, नभबानी-आकाशवाणी होती है लेकिन ये आकाशवाणी हमने कभी सुनी नहीं है। लेकिन आकाश एक अंदर भी है। उसको शब्दो में डालूं तो कहूं, आंतर-बाह्य; अंत:करणीय बोली। तीसरी बानी है, बेदबानी। वेद तो गाय है लेकिन गाय के कान से दूध नहीं निकलता! गाय के शिंग से दूध नहीं निकलता। गाय के किसी भी अंग से दूध नहीं निकलता। दूध निकलता है केवल स्तन से। उसको फिर वेदवाणी बताया गया मेरी समझ में। लेकिन मुझे तो बात कहनी थी वो ये थी। चौथी वाणी है चक्षुवाणी; आंख की जूबां। आंखें बहुत कह देती है। नेत्र बहुत कुछ बोलते हैं।

युवक! बाल जरूर काले करना! आप मौज से रहो युवान भाई-बहन। ये एन्जोय करने की सुंदर पृथ्वी है। लेकिन नर्तकी नाचता है तो भी मंच का ख्याल रखता है। वैसे बहुत मौज करो लेकिन भारतीय मंच का ध्यान रखना। हमारे जो मूल्य है, हमारी जो सभ्यतायें है उसका ध्यान रखना। कहने का मतलब, आप जरूर आनंद से रहे; जरूर अपने बालों को संवारे। लेकिन मेरा इरादा तो इतना है कि सफेद बाल का भी अपना एक गौरव है। सुकरात की दाढ़ी कभी फोटो में देखी? सोक्रेटीस की दाढ़ी सत्य का परिचय देती है। हमारे भावनगर के मर्हूम दीवानसाहब सर प्रभाशंकर पट्टणी की सफेद दाढ़ी! दुला भाया काग की सफेद दाढ़ी कुछ मेसेज देती है। तो यहां से जो बोला जाय वो आप पर डाला नहीं जाता है। दबाव नहीं है। मैं आपको शरीक करता हूं इस महफ़िल में और वार्तालाप करता हूं। सात्त्विक-तात्त्विक विचारों को संवादी सूर में आपके सामने रखकर एक संगति कर रहा हूं।

तो 'मानस' के अंदर कवीश्वर, कपीश्वर, रामेश्वर, भुवनेश्वर, अखिलेश्वर आदि-आदि शब्दब्रह्म का अवतरण हुआ है। एक पंक्ति 'मानस' में ऐसी आती है जहां ईश्वर की परिभाषा करते हुए गोस्वामीजी एक बहुत बड़ा सूत्रपात करते हैं कि ईश्वर क्या? इश्वर मानी क्या?

मुधा बचन नहीं इस्वर कहहि।

ईश्वर की सीधी परिभाषा। ईश्वर वो है जो कभी असत्य वचन न कहे। ईश्वर होना बड़ा मुश्किल है। मिथ्या नहीं बोलना, मिथ्या भाषण नहीं करना वो ईश्वरत्व है। आत्मप्रतीति जहां कहे कि ये आदमी जो-जहां बोलता है वो मिथ्या नहीं हो सकता तो समझना वो हमारे लिए ईश्वर है। कोई ग्रंथ, जिस पर हमारा भरोसा हो कि ये ग्रंथ कभी मिथ्या नहीं कह सकता तो वो ग्रंथ ईश्वर है। जो मुधा न बोले! बहुत कठिन है। इसीलिए मैं भी बीचवाला मारग आपको बताता रहा कि सत्य की निकट जितनी मात्रा में रहा जाय वो भी अच्छा है। एक दूसरी भुवनेश्वर की परिभाषा 'रामचरित मानस' अंतर्गत आती है और वो है ईश्वर के अंशी, जीव के अंश।

इस्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

तो ईश्वर की एक परिभाषा हो गई कि वो अंशी है, मूल तत्त्व है। हम उनके अंश है। समुद्र है अंशी, इनमें से एक लोटा पानी भर लो वो हो गया समुद्र का अंश। मात्राभेदे, गुणभेदे नहीं। और वैज्ञानिक सूत्र भी ठीक है और आध्यात्मिक सूत्र भी ठीक है कि जो अंश होता है वो अंशी की ओर ही जायेगा। ये उनका प्राकृतिक नियम है। पानी को आप लाख उछालो आसमां में लेकिन गिरेगा नीचे ही। क्योंकि वो समंदर का अंश होने कारण उसकी गति अपने अंशी की ओर ही होगी कि जहां सागर है वहीं उसको जाना है। और ज्योति को आप लाख उलटा करो फिर भी ये ज्योति उपर ही जायेगी क्योंकि दीप रूप अंश का अंशी सूर्य है। और 'भगवद्गीता' में भगवान योगेश्वर कहते हैं, 'ममैवंशोजीवलोके जीवभूत सनातन।' तो ईश्वर वो है जो अंशी है। ये भी एक भुवनेश्वर की व्याख्या हो गई। भुवनेश्वर की एक व्याख्या 'मानस' अंतर्गत ऐसी है कि ईश्वर में कोई भेद नहीं है।

बतावी दउं तमोने हुं अभेदी भेद ईश्वरनो,
तने श्रद्धा छे ए श्रद्धा ज ईश्वर छे।

शायद शून्य पालनपुरी का शे'र है। आदमी कैसा है? 'गीता' में लिखा है, जैसी उसकी श्रद्धा। 'सत्यानुरूप सर्वस्यश्रद्धाभवति भारत।' अर्जुन, आदमी अपने अंत:करण की श्रद्धा जैसी वैसा आदमी। ईश्वर में कोई भेद नहीं। लेकिन ईश्वर और जीव में मात्राभेद बहुत है। लक्ष्मणजी

पूछते हैं भगवान राम को कि महाराज, आप अपने मुख से मुझे ईश्वर और जीव का भेद समझाईए। फिर-

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव।।

तो कई रूपों से भगवान का भुवनेश्वरपना 'रामचरित मानस' में अंकित किया गया है। तुलसीजी कहते हैं, रामकथा क्या है? व्यक्ति का अपना संदेह, अपना मोह और अपना भ्रम मिटानेवाली जो कथा है वो रामकथा है।

तो मेरे भाई बहन, भगवान की कथा संदेह, मोह और भ्रम तीनों को मिटाती है। ये तीन गिनाये हैं इसका मतलब ये है कि तीनों का अर्थ बिलग हो सकता है। और 'मानस' का दर्शन करने से पता लगता है कि किसीका संदेह रामकथा से मिटा है। किसीका मोह नष्ट हुआ है रामकथा से। किसीका भ्रम मिटा है रामकथा से। तो ऐसी रामकथा में और कुछ नहीं है, राम का नाम है। तो नाम भी हो गया संदेह मिटानेवाला, मोह मिटानेवाला और भ्रम मिटानेवाला। संदेह हुआ भवानी को राम पर। मोह नारद को हुआ विश्वमोहिनी में, भगवंत रचित माया में। भ्रम गरुड को हुआ कि भगवान बंधे क्यों गये? तो तीनों को मिटाती है रामकथा। भवानी को राम पर संदेह हुआ कि ये ब्रह्म है क्या, जो सीता के वियोग में रोता है? और शिवजी कहते हैं कि देवी, आप संदेह न करे।

संदेह तीन प्रकार से प्रगट होता है। संदेह उत्पन्न होता है देखने से। पार्वती के संदेह की भूमिका है निज के दर्शन। उसने राम को रोते देखा। पूछते देखा कि मेरी मृगनयनी सीता कहां है? ऐसे विषयी और कामुक व्यक्ति की तरह राम को मूढ़ की तरह खोजते देखा। इस मंजर को देखकर भवानी को रामचरित्र पर संदेह हो गया। इससे मुझे कहने में बल मिल जाता है कि संदेह का उत्पत्ति स्थान है देखना। दूसरा, संदेह उत्पन्न होने की भूमिका है श्रवण। सुनने से संदेह पैदा होता है। आपके कान में कोई कुछ ऐसी बात सुना दे, आपको संदेह हो जाएगा। आपको कोई कह दे कि आपके बारे में फल्गुंभाई ऐसा बोल रहे थे! बस, ऐसा कोई कचरा डाल दे कान में और संदेह प्रगट हो जाता है। तीसरा संदेह का उद्गम स्थान है व्यक्ति का स्वयं का स्वभाव। कई लोगों का स्वभाव ही संदेहशील होता है। कोई दो व्यक्ति ऐसे ही खड़े होगे लेकिन आपको ऐसे ही स्वभाव के कारण लगेगा कि मेरे ही बारे में बात हो रही है! स्वभावजन्य संदेह, श्रवणजन्य संदेह, दृश्यजन्य संदेह।

तो सती को स्वभाव से संदेह हुआ; सती को देखने से संदेह हुआ और सती को सुनने से संदेह हुआ। लेकिन मेरे समझने में, मेरे अनुभव में ये बात भी आ रही है कि ये तीन प्रकार से प्रगट होनेवाला वहम, भ्रम, संदेह, शंका जो कहो; उसका निवारण भी दर्शन है। निवारण भी श्रवण है और निवारण भी किसी शुद्ध स्वभाववाले आदमी का संग है। अर्जुन को ये परिवारवालों का दृश्य देखकर संदेह हुआ, वो ही अर्जुन का संदेह निर्मूल करीब-करीब हो गया अर्जुन की आंखों ने कृष्ण का विश्वास देखा और कृष्ण का विश्वरूप देखने से प्रार्थना प्रगट हुई। संदेह समाप्त हो गया। कांटे से कांटा निकलता है, शूल से शूल निकलती है। देखने से जो संदेह प्रगट हुआ वो देखने से मिटता है। दूसरा श्रवण से जो संदेह हुआ। शिवजी भगवान राम के लिए 'सच्चिदानंद' शब्द बोले वो सुनकर सती को संदेह हुआ। वो ही सती का संदेह वो ही राम की कथा सुनने से गया। और सती के स्वभाव से संदेह प्रगट हुआ था वो ही भगवान के स्वभाव को जब जाना, सती को ये

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि 'रामचरित मानस' में सब से पहले जहां 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग हुआ है वो 'कवीश्वर' है, 'वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।' ये बड़ी अद्भुत और बड़ी चोटी की बात है मेरी समझ में। कवि ईश्वर है। जैसे कि आदि कवि वाल्मीकि ईश्वर है। जैसे कि अनादि कवि भगवान शिव ईश्वर है। जैसे कि भगवान व्यास ईश्वर है। ये तो अनादि से स्मरण कर रहा हूं लेकिन कोई भी कवि समझदार के लिए कवीश्वर है। मेरे लिए 'रामचरित मानस' की नव दिन की महफ़िल एक 'मानस-मुशायरा' ही है।

जानकारी में आ गई। स्वभाव के द्वारा पैदा हुआ संदेह स्वभाव का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से समाप्त होता है।

तो सती को संदेह हुआ था इसीलिए सती शिव से त्यागी गई। और शिव सत्तासी हजार साल तक समाधि में बैठे। सतासी हजार साल के बाद शिवजी समाधि से बाहर आये। शंकर भगवान के सन्मुख सती आई, जो विमुख थी अभी तक। सती को शिव ने त्याग किया वो पीड़ा कम हो इसीलिए भगवान शंकर सती को कुछ रसप्रद कथा सुनाने लगे। कथा में ये शक्ति है कि तमाम विषादों का नाश कथा कर सकती है। दु:ख की मात्रा कम होती है कथा से। और हमारे संदेह मिटा देती है भगवान की कथा। छोटे-बड़े संदेह, छोटी-बड़ी समस्याएं, भगवान की कथा उसमें राहत पहुंचा देती है। विषाद मानी पीड़ा, दु:ख की मात्रा कम कर देती है भगवान की कथा; नष्ट भी कर सकती है, अवश्य। लेकिन कम से कम विषाद का दमन हो जाये, शमन हो जाये वो भी बड़ी उपलब्धि है। ये तीनों हो सकता है। सुख मिलेगा भरपूर। संशय बिलकुल समाप्त हो जाएंगे और दु:ख कम हो जाएगा। लेकिन शर्त, 'तजि सकल आस', तमाम आशा छोड़ दी जाय तो। और हम सब आशा निबद्ध है; आशा में गिरफ्तार है। सुख में भरपूर हम रह सकते हैं। सब संशय समाप्त हो जायेंगे। आप पूछेंगे जिज्ञासा से कुछ विशेष जानने के लिए। ये जिज्ञासा है। ये जिज्ञासा तो जरूरी है। शंका जरूरी नहीं है। जिज्ञासा तो सबने की है। हमारे यहां एक उपनिषद का नाम है 'प्रश्नोपनिषद।' और सभी शास्त्र प्रश्नों से ही तो शुरू होते हैं। किसीने पूछा, जवाब दिया; पूछा, जवाब दिया। लेकिन जवाब देनेवाला अनुभव कर चुका हो तो ही सही जवाब दे सकता है। तुलसीदासजी 'दोहावली रामायण' में एक दोहा लिखते हैं। मैत्री और दुश्मनी को उसके व्यतिक्रम से देखना पड़ता है; तुलसी कहते हैं-

उत्तम मध्यम नीच गति वाहन सिकता पानी।

उत्तम व्यक्ति, मध्यम व्यक्ति और नीच व्यक्ति के साथ मैत्री कैसी होती है और दुश्मनी कैसी होती है? उत्तम व्यक्ति के साथ मैत्री कैसी होती है? पथ्थर में लकीर। मिटे मिटाये ना। मध्यम व्यक्ति के साथ मैत्री कैसी? रेत में-बालू में कोई लकीर अंकित करो, कुछ समय मैत्री रहेगी लेकिन हवा का झोंका लगा, मैत्री खतम! या तो समंदर की लहर आयेगी, बालू की रेखा समाप्त! ये मध्यम व्यक्ति की मैत्री। और नीच की? पानी में रेखा।

मारी हस्ती मारी पाछळ ए रीते विसराई गई,
आंगळी जळमांथी नीकळी ने जगा पुराई गई।
-ओजस पालनपुरी

पानी का धर्म है समान स्थिति पर रहना। नीच व्यक्ति की मैत्री पानी में लकीर की तरह है, टिकती ही नहीं। और दुश्मनी? करो ही ना किसीसे दुश्मनी लेकिन करनी है तो उत्तम की करो। उत्तम की दुश्मनी पानी की रेखा है, टिकेगी नहीं। तुम लाख टिकाओ तो भी उत्तम के साथ दुश्मनी रहेगी नहीं। मध्यम के साथ दुश्मनी ये बालू में रेख है। थोड़ी टिकेगी। अवसर आने के बाद मिट जाएगी। लेकिन नीच व्यक्ति के साथ दुश्मनी लोहे में लकीर! तो भगवान की कथा से संशय का शमन होगा लेकिन शमन करानेवाला अनुभवी होना चाहिए।

तो भगवान शंकर रसप्रद कथा सुनाने लगे ताकि सती का दु:ख कम हो। उसी समय दक्ष महाराज के घर यज्ञ होता है। पिता के घर उत्सव है, बात सुनकर सती का मन लालायित हुआ। सती मानी नहीं। गई। किसीने सती को बुलाया तक नहीं। एक माँ प्रेम से मिली। सती यज्ञमंड़प में जाती है। भगवान शंकर, विष्णु और ब्रह्मा की स्थापना तक नहीं देखी तब सती को रोष आ गया। देवताओं को, ब्राह्मणों को, मुनिओं को, सब को उग्र भाषा में संबोधित करती है! सती दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर को आहूत कर देती है। जलकर भस्म होती है। हाहाकार हो गया!

कोई भी सत्कर्म बदला लेने की वृत्ति से मत करना, बलिदान देने की वृत्ति से करना। छोटा हो या बड़ा। कोई भी सत्कर्म देखादेखी से मत करना। सत्कर्म स्पर्धा के लिए नहीं है। दूसरों का शोषण करके कथा भी करने की जरूरत नहीं है। सत्कर्म बलिदान के लिए हो, बदला लेने के लिए कभी न हो। सती ने यज्ञ में जलते समय परमात्मा से मांगा कि फ़िर मेरा जन्म मनुष्य का हो और उनमें भी मैं स्त्री बनूं और जनम-जनम भगवान शंकर को ही प्राप्त करूं। ऐसी भावना के साथ सती देहत्याग करती है। सती का दूसरा जन्म हिमालय के घर, पर्वत के घर पार्वती के रूप में होता है।

उपाय जीव को करना है, सहाय शिव करता है

मानस-भुवनेश्वर
: ५ :

बाप! भगवान भुवनेश्वर की इस बड़ी प्राचीन नगरी में नव दिवसीय रामकथा के आज के दिन की कथा के आरंभ में भगवान भुवनेश्वर से लेकर आप सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। आईये, इस कथा का जो केन्द्रबिंदु है, 'मानस-भुवनेश्वर' उसके बारे में कुछ ओर हम मिलकर सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में करें। मेरे श्रोतालोग इनमें से कई 'रामचरित मानस' का स्वाध्याय करते-करते भी कई जानकारी मुझे भेजते रहते हैं। हमारे बरोडावाले हरीशभाई ने मुझे एक लिस्ट भेजा कि बापू, मेरी गिनती के अनुसार 'रामचरित मानस' में अठारह बार 'ईश्वर' शब्द आया है। अब भूल-चूक लेवी-देवी! ये तो शास्त्र की बात है। इसमें कभी भी चूक हो सकती है। मैं स्वागत करता हूं।

तो, 'ईश्वर' शब्द, जो भुवनेश्वर में 'ईश्वर' शब्द है वो एक गिनती के अनुसार 'रामचरित मानस' में अठारह बार आया है। पूर्णांक में है। ये योग है कि अस्तित्व की कोई योजना है, खबर नहीं! लेकिन 'रामचरित मानस' में जब इस तरह संशोधन होता है, अंक भी मिलता है तो बहुत महत्त्व का मिलता है। अब जैसे कि हम चौदह भुवन, चौदह ब्रह्मांड कहते हैं। 'भुवन' शब्द तो अनेक बार 'मानस' में आया है। लेकिन एक वचन में 'ब्रह्मांड' शब्द का जहां प्रयोग आया 'मानस' में वो केवल चौदह बार आया है। फिर कोटि-कोटि ब्रह्मांड कहे, लेकिन 'ब्रह्मांड' शब्द जब एक वचन युझ होता है तो वो केवल चौदह बार है। तो ये भी कुछ योगानुयोग है। मानो चौदह ब्रह्मांड की बात गोस्वामीजी करते हैं।

एक उपनिषद का नाम है, 'सर्वसार उपनिषद।' उपनिषद एक सौ आठ है। इनमें से संन्यास जगत, साधु-संत, शांकरी परंपरा उसमें बारह उपनिषद को प्रधानता देते हैं। कोई ग्यारह को देते हैं। लेकिन कुल मिलाकर एक सौ आठ माना जाता है। और महापुरुषों का ऐसा मानना है कि मूल तो बारह ही हैं, बाकी तो फिर ये एड किये गये हैं। जो हो, लेकिन मैं 'मानस-भुवनेश्वर' आज का जो आरंभ करने जा रहा हूं वो 'सर्वसार उपनिषद' से करना चाहता हूं। पहले थोड़ी माहिती 'सर्वसार उपनिषद' की। ये उपनिषद बहुत महत्त्व का माना गया है। क्योंकि उसका नाम मनीषीओं ने 'सर्वसार उपनिषद' रखा है। इसका मतलब हुआ कि जितने

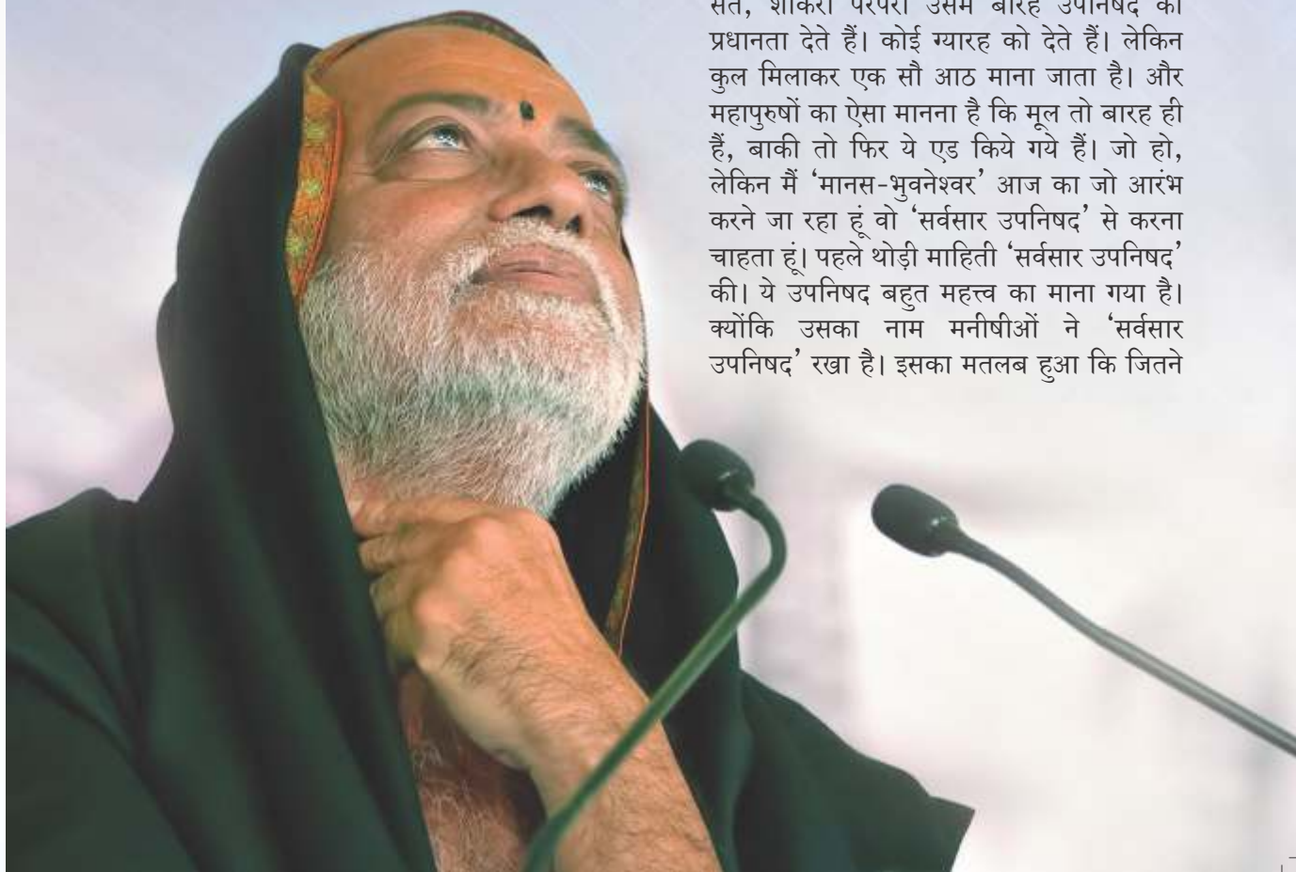

भी उपनिषद है उसका निचोड़ इस उपनिषद में है। इतना बृहद् नहीं है लेकिन सभी उपनिषदों से सार ले-ले करके एक स्वतंत्र उपनिषद रचा गया, जिसका नाम है 'सर्वसार उपनिषद।' उसीका ये मंत्र है, प्लीज़ हम सब बोलें।

सत्यं ज्ञानं अनंतं आनन्दं ब्रह्म सत्यं अविनाशि
नामदेशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यस्तु।
यन्न विनश्यत्यविनाशि तत्सत्यमित्युच्यते।

अब पहली स्पष्टता कर दूं कि 'सर्वसार उपनिषद' के अब ये जो टुकड़ें हैं उसमें 'भुवनेश्वर' नहीं लिखा है, ध्यान देना। उसके क्रम में ईश्वर की परिभाषा है। 'भुवनेश्वर' मैं लगा रहा हूं। आप कहेंगे कि आपको क्या अधिकार? आप तो श्रद्धा से सुने जायेंगे, मुझे ललकारेंगे नहीं लेकिन मैं पहले से ही स्पष्टता कर दूं कि भविष्य में आपको तकलीफ़ न हो। मेरा क्या अधिकार कि मैं ईश्वर की ये परिभाषा है 'सर्वसार उपनिषद' में उसमें 'भुवनेश्वर' शब्द जोडूं? मेरे विषय को दृढ़ करने के लिए? आपको लगे कि अहाहा! बापू तो कहां-कहां से ले आते हैं इसीलिए? इतना तो आप मुझे पहचानते होंगे कि मेरा कोई ऐसा तो इरादा है ही नहीं कि वाह-वाह करे! और समाज की वाह-वाह दो कौड़ी की होती है। इसमें ज्यादा कोई बल नहीं होता है। इससे क्या लेना-देना? लेकिन उपनिषद में 'गुरु' शब्द है। मैं कई बार बोल चुका हूं उपनिषद में कहीं भी 'सद्गुरु' शब्द है ही नहीं। केवल 'गुरु' शब्द है। मध्यकालीन युग के संतों ने अपने सत् के अधिकार से गुरु के आगे 'सद्' जोड़कर 'सद्गुरु' कर दिया। शास्त्र में नहीं है। 'रामायण' में है। सोलहवीं सदी में मध्ययुग में जो-जो संत महापुरुष हुए हैं उसने गुरु को सद्गुरु रूप से पुकारा। अच्छा लगता है। तो मध्यकालीन संतों ने गुरु को सद्गुरु कर दिया। मैं इतने सालों से 'रामायण' गा रहा हूं तो तलगाजरडा को भी तो थोड़ा अधिकार होना चाहिए कि कोई शब्द मैं भी जोडूं। और ये केवल मेरे व्यक्तिगत आनंद के लिए मैं जोड़ रहा हूं। आप उसको कुबूल करे, जयजयकार करे इसीलिए नहीं। लेकिन 'गुरु' का 'सद्गुरु' जो हो सकता है, तो 'ईश्वर' का तलगाजरडा की दृष्टि में 'भुवनेश्वर' भी हो सकता है। क्योंकि मैंने तो तलगाजरडा के एक मिट्टी के मकान के कोने में भुवनेश्वर को देखा था! जो दस्तार बांधे हुए थे, जो पघडी बांधे हुए थे! मेरे भुवनेश्वर वहां कौने में बैठे थे! मेरा ईश्वर, मेरा सद्गुरु, जो कहो।

आप जानते हैं कि जगद्गुरु शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य हुए हैं। एक दिन की बात है। पद्माचार्य ने जगद्गुरु शंकराचार्य की ऊंगली पकड़कर पूरे भारत की यात्रा की थी। एक बार पद्माचार्य शंकराचार्य भगवान से कहते हैं कि आप मुझे आज्ञा करे तो मुझे एक बार स्वतंत्र रूप में भारत की यात्रा करनी है। मुझे तीर्थों में फिर एक बार स्नान करना है, देवदर्शन करना है। इच्छा तो अच्छी व्यक्त की है। तीर्थों में जाने का मन आदमी को बार-बार होता है। अब उसी समय वहां आदि जगद्गुरु कुछ समय मौन रहे। पद्माचार्य को लगा कि कुछ मेरी चूक हो गई शायद! तब तीन बात जगद्गुरु कहते हैं। जो ऐसी स्थिति में आ जाते हैं उसको ये सब कहने का अधिकार है। उसने कहा, मैं तेरे पास बैठा हूं फिर भी तुझे तीर्थयात्रा करनी है? वो कहते हैं कि मैं यहां हूं और तुझे तीर्थ में भटकना है? दूसरा, तुने कहा पद्माचार्य कि मुझे तीर्थों में देवदर्शन करने जाना है। तो मैं यहा हूं, तू रोज मेरा दर्शन करता है फिर भी तुझे कोई और देवदर्शन की अभी कामना शेष है? और तीसरी बात, जगद्गुरु कहते हैं कि तुने कहा कि मुझे तीर्थों में स्नान करना है। क्या मेरे चरणों में बैठना तेरा तीर्थस्नान नहीं है? ये मैं बिलकुल इन्वर्टड कोमा में कहता हूं। ये जगद्गुरु के ही शब्द मैं बोल रहा हूं। प्रस्तुति मेरी है। प्रसव तो वहां हुआ है। मेरी आंख का जल देखकर तेरा तीर्थस्नान नहीं होता है? पद्माचार्य चुप हो जाते हैं; चरण पकड़ लेते हैं। मेरे कहने का मतलब है कि सबका अपना-अपना भुवनेश्वर होता है। सबका अपना-अपना तीर्थ होता है। सबका अपना-अपना देव होता है। सबकी अपनी-अपनी यात्रा होती है।

तो, मैं व्यक्तिगतरूप में कहूं तो मेरा भुवनेश्वर तो वहां है! मैं अपने लिए, अपनी निष्ठा के लिए, अपने आनंद के लिए ईश्वर को भुवनेश्वर कह दूं। ये अच्छा है कि बुरा सब जिम्मेदारी मेरी। एक वस्तु याद रखियेगा, एक नियम है अस्तित्व का। जिसके पास सत्ता होती है उसको अधिकार होता है। लेकिन सत्ता के पास जो अधिकार होता है वो इस अधिकार का सही उपयोग भी करता है, गलत उपयोग भी करता है। लेकिन जिसके पास सत् होता है वो कभी उसका गलत उपयोग करेगा ही नहीं, सही उपयोग ही करेगा। तो गुरु को जब हम सद्गुरु कहते हैं, 'सद्' शब्द लगा रहे हैं तो वहां कोई भी गेरउपयोग कर नहीं सकता। तो मेरे लिए ये भुवनेश्वर है। तो यहां फिर ईश्वर की, भुवनेश्वर की, अखिलेश्वर की, जगदीश्वर की जो भी आप शब्दप्रयोग करे इस भुवनेश्वर की व्याख्या के लिए; तो मेरी व्यासपीठ को 'सर्वसार उपनिषद' से फिर एक ये व्याख्या प्राप्त होती है जो मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं। कौन है भुवनेश्वर? कौन है ईश्वर? क्या है उसकी परख? केसे पहचाने उसको? तो उपनिषदकार कहते हैं, 'सत्य एक ईश्वर', गांधीबापू के बोल। सत्येश्वर, प्रेमेश्वर, करुणेश्वर। सत्य, प्रेम, करुणा तीन भुवन है। प्रेम पृथ्वी पर होता है। सत्य बहुत गहरा है, मानो पातल है और करुणा आसमां है, ब्रह्मलोक है। छायी हुई है। तो भुवनेश्वर की परिभाषा एक रूप में करे तो ये है कि सत्य है भुवनेश्वर। दूसरी बात 'ज्ञानं।' ज्ञान ईश्वर है। ज्ञान भुवनेश्वर है। जिसको शास्त्र ज्ञान कहते हैं वो ज्ञान। छोटी-बडी माहिती ये सब इन्फोर्मेशन जिसको हम आज की बोली में कहते हैं वो नहीं। ज्ञान ईश्वर है। इसीलिए तो ज्ञान को ईश्वर के साथ जोड़ते हुए 'रामचरित मानस' में एक पंक्ति आई-

जो सबके रह ग्यान एक रस।
ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस।।

तो वहां 'ज्ञान' और 'ईश्वर' दोनों शब्द 'मानस' ने योजित किया है। तो सत्य है भुवनेश्वर। जिसको सही में ज्ञान कहते हैं वो है भुवनेश्वर। अनंत है भुवनेश्वर। तो, सत्य है भुवनेश्वर, ज्ञान है भुवनेश्वर, अनंत है भुवनेश्वर, आनंद है भुवनेश्वर। कोई व्यक्ति आपको कायम आनंद में दिखे तो उसके पास बैठना, समझना भुवनेश्वर के पास बैठे हैं। जो गुरु को पूरा का पूरा पा लेते हैं उसको ही अमीर कहते हैं। और जो अमीर होता है वो ही खुशरो होता है। उसको 'अमीर खुशरो' कहता हूं। और कोई खुश नहीं रह सकता। दुनिया के अमीर कहां खुश रह सकते हैं? ये तो पंद्रह अनर्थों से बंधन में है। क्या सटीक दर्शन है 'श्रीमद् भागवतजी' में शुकदेवजी महाराज का! और ऐसे अनर्थ और ग्रंथों में भी प्राप्य है लेकिन मैं 'भागवत' का सहारा ले रहा हूं। अर्थ मानी पैसा। पैसे के पंद्रह अनर्थ है।

मैं आपको बता दूं। अर्थ की जरूरत है। देश का, राज्य का परिवार का आर्थिक स्तर मजबूत होना चाहिए। हम संसारी है, हम जंतु है। हम कोई महात्मा नहीं है; मैं और आप सब। अपना सबका आयोजन होना चाहिए साहब! कोई अपने परिवार के लिए, अपने भविष्य के लिए आयोजन करके पैसे रख ले तो अधार्मिक निशानी नहीं है। जो केन्द्र में अपने 'मैं' को रखता है और परिधि में 'तू' को रखता है वो आदमी अधार्मिक है! धार्मिक वो है जिसको केन्द्र में तू, परिधि में मैं। मेरा हरि केन्द्र में। अर्थ नहीं परमार्थ केन्द्र में और मैं इस परमार्थ के इर्द-गिर्द में रास लूं, घूमुं। और आखिरी, जिसको कहते हैं बिलकुल उपर का। न धार्मिक, न अधार्मिक; न 'मैं' रहे, न 'तू' रहे। बस जो है, सो है। न 'मैं' बचा, न 'तू' बचा।

तो पैसा कोई बुरी चीज़ थोड़ी है? कोई-कोई तथाकथित महापुरुष कहते हैं, पैसे कुछ नहीं है, माया है! मायाए दान कर्युं एटले तमे आ ए.सी.वाळा रूम कर्या छे! तमे ईनोवामां फरो छो! सत्य को ऐसा निरादर नहीं होना चाहिए। पैसे का महत्त्व नहीं होता तो हमारे यहां ऋषि-मुनि दूसरे स्थान पर अर्थ को नहीं रखते। पहला धर्म, दूसरा अर्थ, फिर काम, फिर मोक्ष। लेकिन अर्थ के पंद्रह अनर्थ भी है। वो हम समझ लें तो अर्थ के द्वारा जो अनर्थ होता है इससे बच सकते हैं और जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो: वैरम् अविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ।।
एते पंचदश अनर्थाः हि अर्थमूलाः मताः नृणाम्।
तस्मदनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।।
- श्रीमद्भागवतम् (११/२३/१८-१९)

'स्तेयं'; पैसा चोरी कराता ही है। कोई बच जाये, पगे लागीए! बाकी पैसा चोरी कराएगा ही। इसका मतलब ये नहीं कि सब चोरी करते हैं। बच जाये वो बड़भागी है। दूसरा अनर्थ बताया भागवतकार ने हिंसा। पैसे के कारण हिंसा होती है। आदमी आदमी की हत्या कर देता है पैसों के लिए। किडनेप करता है! दुनिया में घटनायें घटती है केवल पैसों के लिए। ये अनर्थ है, हिंसा है अथवा तो ये हत्या न करे, तो किसीको अपने वैभव दिखाकर किसीके मन को पीड़ा पहुंचाना वो भी तो हिंसा है। संपत्तिवालों को कहना चाहिए कि दीपावलि के फ़टाकें तुम्हारें घर तुम्हारे बच्चों के लिए तुम फ़ोड़ो इससे पहले कोई दीन-

हीन गरीबों को पहले बांटो। तलगाजरडा ये करता है इसीलिए कहने का अधिकारी है। नई मौसम के आम आये और हम खाये तो साथ-साथ इन गरीब दीन-हीन को भी बांटो। दूसरों को पीड़ित करना, शोषित करना हिंसा है। अर्थ हिंसा का अनर्थ पैदा करता है। तीसरा, 'अनृतं'; अनृत मानी झूठ। पैसा असत्य बुलवायेगा। बच जाये उसको तो मेरा प्रणाम! मैं ये नहीं कहता कि सब ऐसे होते हैं लेकिन पैसा झूठ बुलवायेगा। ये अनर्थ आयेगा छाया बनकर। 'स्तेयं हिंसानृतं दम्भः' पैसा दंभ करवायेगा। दंभ का दूषण आता है। 'काम'; धन आने के बाद आदमी कुछ भी कर सकता है। और कुछ भी करने का सामर्थ्य आते ही न करने का भी करने लगता है। और काम का अर्थ केवल भोग नहीं है, काम का अर्थ यहां ये भी हो सकता है कि एक अनर्थ पैदा होता है कि कामना ओर बढ़े, ओर बढ़े। ये भी अनर्थ है। 'क्रोध'; पैसों के कारण क्रोध आता है। थोड़ा घाटा आये तो बाप बेटे पर क्रोध करता है, 'तुने ध्यान नहीं रखा!' और बेटा भी बाप पर क्रोध करेगा कि आप कथा में ही घूमते रहते हो! हमारे पास भी रहो, हमें थोड़ा गाईड करो! क्रोध लायेगा पैसा। ठीक से घर में पैसे न दो, पत्नी क्रोध करेगी। आदमी नौकर पर क्रोध करने लगता है। थोड़ा पैसा क्रोध करायेगा। 'स्मयो'; स्मय का अर्थ होता है गर्व। पैसा गर्व लाता है। तुलसीदासजी ने एक चौपाई लिखी है-

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।

गर्व आता है, स्वाभाविक है, हो सकता है। दूसरा शब्द 'मद' लिखा है यहां। मद का अर्थ है नशे में चूर। विवेक चुक जाये अर्थ के कारण ये आगे का अनर्थ बताया है। 'भेदो'; अर्थ का आगे का अनर्थ बताया भेद। जिसके पास अर्थ है उसका अनर्थ है भेदबुद्धि प्रगट करेगी। अपने-परायों का भेद करने लगेगा। धन भेद प्रगट कर देता है। समता नहीं होने देता ये अनर्थ है। 'वैरम्'; अर्थ का आगे का अनर्थ है भाई-भाई में वैर प्रगट कराना। बाप-बेटे में वैरविग्रह की सृष्टि करना। मालिक-सेवक के बीच में वैर, पार्टनर-पार्टनर के बीच में वैर प्रगट करना। 'श्रीमद् भागवतजी' ने हमारे कल्याण के लिए इतने सालों पहले ये सब लिखकर दे रखा है कि जहां अर्थ है वहां वैर प्रगट होता है किसी न किसी रूप में। कभी वैर न हो तो वो वंदनीय है। वो तो अपवाद है। अवश्य। 'वैरम् अविश्वासः'; अर्थ अविश्वास पैदा करता है। कुछ कर तो नहीं गया? इतना वो तो नहीं बीच में से उठा गया? अविश्वास प्रगट हो जायेगा अर्थ के कारण। 'संस्पर्धा'; आगे का अनर्थ है स्पर्धा। मैं उसको ओवरटेईक करूं। मैं उससे ज्यादा इकठ्ठा कर लूं। ये स्वाभाविक होगा। मैं स्पर्धा का विरोधी नहीं हूं लेकिन इतना जरूर कहूं कि स्पर्धा करो तो खुद से करो कि मैं गत साल प्रामाणिकता से इतना कमाया था। इस साल प्रामाणिकता से ज्यादा कमाउंगा। स्पर्धा खुद से हो, खुदाई से नहीं। 'व्यसनानि च'; अर्थ के कारण ये तीन प्रकार के व्यसन आते हैं। एक व्यसन का नाम है दुराचार। दूसरा अनर्थ है छोटा-बड़ा व्यसन अर्थ के कारण हमारें में आ जाता है। और तीसरा अहंकार; खोखला अहंकार। कुल मिलाकर पंद्रह अनर्थ धन के बताये हैं। इसका मतलब ये नहीं कि धन के अनर्थ है तो धन हम छोड़ दे। कोई किसान सोचता है कि मैं बीज बोउंगा खेत में क्या फायदा? फसल पकेगी तो बकरे, गाय, भेंस आकर खा जायेंगे, ऐसा सोचकर बीज बोना बंद नहीं किया जाता। वाड करना शुरू कर दो। कमाना बंद मत करो, वाड कर लो। उसको संयमित करके उसका सदुपयोग करो।

हम चर्चा कर रहे हैं भुवनेश्वर की। और हम चल पड़े थे अमीर की व्याख्या करते-करते तो अमीर खुशरो की चर्चा जो कल मैं कर रहा था इसका मतलब ये कि अमीर वो है, धनवान वो है, अर्थवान वो है जिसने अपने सद्गुरु को पूरा का पूरा पा लिया है। और वो ही जगत में खुश रह सकता है। बाकी खुश रहना बहुत मुश्किल है। अर्थ, अनर्थ करायेगा ही। कहां अमीर खुशरो की धन संपदा! लेकिन ये संपदा इतनी होने के बाद भी अमीर गरीब था। लेकिन तब निझामुद्दीन ओलिया मिल गया तो अमीर सब कुछ एक ब्राह्मण को देने के बाद भी सही में अमीर हो गया और जीवन में खुश रह सका।

'सत्यं ज्ञानं अनंतं आनंदं...'; ईश्वर का, भुवनेश्वर का एक सगोत्री शब्द है, 'आनंदम्।' जो कायम आनंद में रहे। किसी व्यक्ति को आप सदैव आनंद में ही देखो, कभी विषाद में आप देखो ही ना तो समझना ये

भुवनेश्वर है। ये चलता-फ़िरता भुवनेश्वर है। कठिन है कायम आनंद में रहना ये संत-फ़कीरों के सिवा। हमारे जैसों की क्या औकात कि हर वक्त हम आनंद में रहे? इसीलिए हमारे गुजरात में गाया जाता है-

जो आनंद संत फ़कीर करे,
वो आनंद नाही अमीरी में।

और उसकी ये पंक्ति मुझे बहुत प्यारी लगती है-

सत्कर्म करे और चुप रहे,
छांव मिले या धूप मिले।

तो आनंद है भुवनेश्वर। 'सत्यं ज्ञानं अनंतं आनंद सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं', किसी भी उपाधिओं से नितांत मुक्त है वो भुवनेश्वर है। उपाधि मिन्स प्रतिष्ठा, डिग्रियां, पदवी, छोटे-बड़े विशेषण। भुवनेश्वर वो है जो सभी उपाधि से विनिर्मुक्त रहता है। हम सब जानते हैं, भगवान के आगे हम 'पूज्य' भी नहीं लगाते हैं। किसी ने लिखा है, परम पूज्य कृष्ण भगवान? नहीं; भद्दा लगता है। ये उपाधिमुक्त है। परमपूज्य अनंत श्री विभूषित रामभद्र लिखा है किसीने? जो भी अपने आगे-पीछे बहुत उपाधिओं से जो विभूषित करे वो भले दुनिया की दृष्टि में उसको ब्रह्म स्थापित करे बाकी ये ब्रह्म नहीं है। तमाम उपाधिओं से ब्रह्मतत्त्व, ईश्वरतत्त्व मुक्त है। न परोक्ष, न अपरोक्ष, न दृश्य, न अदृश्य कोई उपाधि से मुक्त ब्रह्मतत्त्व है।

तो भुवनेश्वर के बारे में 'सर्वसार उपनिषद' से जो कुछ बातें प्राप्त हुई सो मैंने आपके सामने रखी। अब भुवनेश्वर की एक ओर व्याख्या। कौन ईश्वर? ईश्वर किसको कहे? 'मानस' में एक पंक्ति है-

ईस्वर राखा धरम हमारा।
जैहसि तैं समेत परिवारा।।

यहां एक और परिभाषा भुवनेश्वर की है, जो हमारे धर्म की रक्षा करता है, हमारे धर्म को जो बचाता है वो भुवनेश्वर है। कभी-कभी हम बोलते हैं न कि भाई, ऐसी मुश्किल परिस्थिति थी, सब कुछ तो छूट गया लेकिन हमने धर्म बचा रखा; हमने नीति बचाये रखी; हमने ईमानदारी बचाये रखी; हमने सत्य बचाये रखा। और जो हमारा बच गया वो जिसके कारण बचा उका नाम भुवनेश्वर।

आप शांति से सोचो, हम कितना सत्य बोल पाये ये तो अपने-अपने अंतरात्मा को पूछे लेकिन यदि कोई ऐसा निर्णय करे कि जहां तक संभव हो मैं सत्यव्रत धारण करूं। तो सत्यरूपी धर्म को कौन बचाता है? ईश्वर ही बचायेगा। हमारी औकात नहीं! हमारा सत्य टूटने में देर नहीं लगती। और सूत्र के रूप में एक बस्तु याद रखना, असत्य जीते तो भी समझना हार गया है। और सत्य हारे तो भी समझना जीत गया है। दुनिया की व्याख्यायें कुछ भी हो, मारो गोली! कौन बचाता है हमारे सत्य को? पल-पल असत्य के खतरे आते हैं? नवाज़ देवबंदीसा'ब का शे'र जो मैं बार-बार क्वोट करता हूं-

मज़ा देखा मियां सच बोलने का?
जिधर तू है उधर कोई नहीं है!

सत्य की रक्षा एक ईश्वर करता है, कभी अपने उपर मत लेना। और गांधी का वचन क्वोट करूं, गांधी ने कहा कि मेरे सत्यव्रत को यदि किसीने भी बहुत बल देकर अक्षुण्ण रखा है तो वो ईश्वर है। क्षण में टूट सकता है हमारा सत्य। तो सत्यरूपी धर्म की रक्षा परमात्मा करता है, ईश्वर करता है। और प्रेमरूपी धर्म की रक्षा भी ईश्वर ही करता है। आप प्रेम करे; परमात्मा से, शास्त्र से, दुनिया से सबको प्यार-महोब्बत करें।

ये मिसरा नहीं है ये वजीफ़ा है मेरा,
खुदा है महोब्बत, महोब्बत खुदा है।
- खुमार बाराबंकवी

तुम उपाय करो तो ईश्वर तुम्हारी सहाय करेगा। ये दो शब्द याद रखना ईश्वर की परिभाषा में 'उपाय' और 'सहाय।' उपाय जीव को करना है, सहाय शिव करता है। हमें पुरुषार्थ करना है, परिणाम परमात्मा देता है। हम प्रयास करते हैं, प्रसाद परमात्मा देता है। पुरुषार्थी को सहाय करनेवाला जो तत्त्व है, जिसका नाम 'रामचरित मानस' ने ईश्वर रखा है, भुवनेश्वर रखा है।

सब से प्यार और महोब्बत करना। कौन रक्षा करता है? ईश्वर रक्षा करता है। और करुणारूपी धर्म की रक्षा भी ईश्वर करता है। कोई छल करके हमें हमारे धर्म से च्यूत करना चाहे तो परमात्मा आकाशवाणी से पुकार करके धर्म की रक्षा कर लेता है कि सावधान! तुम्हारे भोजन में आमिष डाल दिया गया है! ब्राह्मण देवता, खाना मत। और ब्राह्मणों का धर्म बचा लिया ईश्वर ने। हां, हमारे यहां ये जरूर है कि धर्म की रक्षा करे उसकी रक्षा धर्म करे। ये भी अच्छा है कि हमें धर्म की रक्षा करनी चाहिए। लेकिन धर्म का मतलब है सत्य, प्रेम, करुणा। आंतर्-बाह्य दोनों धर्म की चर्चा है। कुछ बहिर् धर्म होता है, कुछ आंतरिक धर्म होता है।

तो मेरे भाई-बहन, हमारे धर्म को जो बचाता है, सुरक्षित रखता है उस परमतत्त्व का नाम भुवनेश्वर है। और दूसरा, 'रामायण' में दो शब्द युझ किये हैं। उपाय और सहाय।

मोर कहा सुनि करहु उपाई।
होइहि ईस्वर करिहि सहाई।।

मेरी बात सुनकर तुम उपाय करो तो ईश्वर तुम्हारी सहाय करेगा। ये दो शब्द याद रखना ईश्वर की परिभाषा में 'उपाय' और 'सहाय।' उपाय जीव को करना है, सहाय शिव करता है। हमें पुरुषार्थ करना है, परिणाम परमात्मा देता है। हम प्रयास करते हैं, प्रसाद परमात्मा देता है। पुरुषार्थी को सहाय करनेवाला जो तत्त्व है, जिसका नाम 'रामचरित मानस' ने ईश्वर रखा है, भुवनेश्वर रखा है।

थोड़ा कथा का क्रम उठा लूं आपके सामने। हिमालय के घर पार्वती का जन्म हुआ। पार्वती जब पर्वतराज के घर पुत्री के रूप में आई तो पर्वतराज की समृद्धि बहुत बढ़ने लगी। स्थावर संपत्ति तो बढ़ी ही बढ़ी लेकिन सबसे बड़ी संपदा ये बढ़ी कि साधु, महात्मा, त्यागी, बिरागी लोग पूरी दुनिया से खींचे आये हैं हिमालय। मेरी व्यासपीठ ने कई बार आपके सामने ये बातें रखी है कि पार्वती श्रद्धा है। मेरे कहने का मतलब इतना ही कि जीवन में जब श्रद्धा का जन्म होता है तो कोई न कोई बुद्धपुरुष, कोई न कोई गुरु, कोई न कोई सद्गुरु बिना बुलाये खींचे आते हैं। पार्वती का जन्म हुआ। पहले जन्म में ये दक्षकन्या थी, सती थी। अपनी चेतना का बहिर्गमन इसको बुद्धि कहते हैं। उसी चेतना का अंतर्गमन उसको श्रद्धा कहते हैं। ऐसा मैं मानता हूं। बुद्धि हमें बहिर् ले जाती है, श्रद्धा हमें भीतर ले जाती है। सती से पार्वती होना, बुद्धि से श्रद्धा में रूपांतरित होना है। सही में बुद्धपुरुष जो होता है वो निमंत्रण से नहीं आता है, श्रद्धा प्रगट होते ही आता है। कोई प्रलोभन देकर आप उसकी पधरामणी करे ऐसा ये सामान्य नहीं होता। उपनिषद में आता है, चार वस्तु से कोई संत आता है। और वो चार वस्तु में पहली श्रद्धा लिखी है।

श्रद्धा भगति ध्यानं योग।

किसी भी व्यक्ति के पास कोई सद्गुरु अपने आप आता है उनके मूल में ये चार तत्त्व उपनिषदकारों ने बताया। एक तो श्रद्धा। शंकराचार्य भगवान को एक प्रश्न पूछा गया कि 'श्रद्धा किम्?' श्रद्धा मानी क्या? तो शंकराचार्य भगवान ने जवाब दिया, 'गुरुवेदांत वाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा।' अपने गुरु के वचन में और वेदांत के वचन में विश्वास उसीका नाम श्रद्धा। ये बड़ी प्यारी व्याख्या है। गुरुवचन और वेदांतवचन पर विश्वास उसको जगद्गुरु आदि शंकराचार्य श्रद्धा कहते हैं। फिर हमारे गुजराती शायर जलन मातरीसाहब का स्मरण होता है-

श्रद्धा नो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

पार्वती श्रद्धा के रूप में प्रगट होती है और संत लोग आने लगे हैं। एक बार परिव्राजक संत देवर्षि नारद, हाथ में वीणा लेकर हिमालय के घर पधारते हैं। मेरा मूल कहना इतना ही कि श्रद्धा बढ़े, गुरु मिले। खोजना नहीं पड़ता है। और जिसको भी मिलता है, समय पर ही मिलता है यदि श्रद्धा बलवान बनती हो तो। तो श्रद्धा बलवत्तर हुई तो नारद आये। नारदजी ने पहले नामकरण किया कि हिमालय, आपकी पुत्री के कई नाम है; उमा, अंबिका, भवानी, कई नाम से पुकारी जाएगी। अब नारदजी 'मानस' की चौपाईओं में पार्वती के हाथ की रेखा देखकर भविष्यकथन करते हैं-

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।

माता-पिता रो पड़े कि इतनी सुंदर कन्या और ऐसा पति मिलेगा! लेकिन पार्वती जान गई, जो-जो वर्णन किया दुल्हे का, वर का वो शिव के सिवा और कोई हो ही नहीं सकता। और ये जो वर के लक्षण बताये हैं वो सब विश्वास के लक्षण है। नारद के इन वचनों को सुनकर रोये पार्वती के माता-पिता! नारदजी मुस्कुराये। नारद ये कहना चाहते हैं कि तुम्हारी बेटी को यदि महादेव मिल गया तो दूषण, भूषण हो जाएगा। विधिलेख देव नहीं मिटा सकता; महादेव मिटा सकता है। ऐसा दातार दुनिया में नहीं हुआ, जैसा महादेव है। ऐसा भुवनेश्वर है। प्रारब्ध देव नहीं मिटा सकता, महादेव मिटा सकता है। नारदजी ने कहा, आपकी बेटी को शंकर मिलेगा लेकिन शंकर के लिए साधना करे तुम्हारी बेटी। और पार्वती इस छोटी उम्र में तप की राह लेती है। और तप का शिखर सर कर दिया पार्वती ने उसी समय आकाशवाणी हुई, 'हिमाचलपुत्री धन्य हो! आपके तप का फल आपको मिल जाएगा। शिव मिलेगा आपको।' तप का फल मिला। शास्त्र का एक नियम है, तप के बिना तेज नहीं आता। अच्छी खोराक खानी चाहिए। खाओ तो इससे तेज नहीं बढ़ता, मेद बढ़ता है! तेज तो तप से ही बढ़ता है।

भगवान शंकर के नेम और प्रेम को देखकर, अविचल भक्ति की रेखा देखकर भगवान नारायण प्रगट हुए। नारायण मानी यहां रामभद्र। शिव को जगाया, 'महाराज, मैं आज आप से मांगने आया हूं! जिस सती का आपने त्याग किया वो दक्षयज्ञ में जल गई। हिमालय के घर उसने पार्वती के रूप में जन्म लिया। उसने बहुत तप किया है आपके लिए और मैंने आकाशवाणी से वरदान भी दे दिया है कि आपको शिव मिलेगा। आप पार्वती का पाणिग्रहण करो। आप शादी करो।' शिव ने, भगवान महादेव ने शादी की हां कह दी। भगवान शिव फिर समाधिस्थ हो गए। और उसी समय ताडकासुर नामक एक राक्षस प्रगट हुआ। सब देवता दुःखी हो गये। शिव की समाधि तोड़ने के लिए कामदेव आता है। भगवान शंकर के मन में भी एक क्षण के लिए क्षोभ हो गया। काम जरा क्षुभित कर दे ये जरा दिमाग में बैठने जैसी बात नहीं। ज्योति के पास अंधेरा जा ही नहीं सकता। शंकर को कोई हिला नहीं सकता बाप! लेकिन दुनिया को बताया कि बड़ाई मत करना। मैं शिव हूं। मुझे भी कामदेव क्षुभित कर सकता है तो तुम अपनी औकात का ध्यान रखना। बड़ाई मत करना। राम के मन में भी पुष्पवाटिका में जानकी को देखकर क्षोभ हुआ। ये सब परमतत्त्व काम के द्वारा क्षुभित बताये गये, हमें सावधान करने के लिए कि बड़ाई मत करना कि हमें कुछ नहीं हो सकता! भगवान महादेव ने तीसरा नेत्र खोला और काम जलकर राख की ढेर बन जाता है। सब देवता स्वार्थी लोग ब्रह्मा की अगवानी में शंकर के पास आकर प्रशंसा करने लगे। शंकरजी ने कहा, देवगण, आप देव है, मैं महादेव हूं। मूल बात करो कि आप क्यों आये हो? स्वार्थी देवताओं ने चतुराई पेश की। शंकर भगवान मुस्कुराये कि आप होंशियारी कर रहे हैं! लेकिन प्रभु ने कहा है इसीलिए मैं ब्याहूंगा, आपके लिए नहीं।

भगवान शिव के निजिगण शंकर का शिंगार करते हैं। जटा का मुकुट, साप का मुकुट, भष्म का लेपन, गंगधारा बह रही है। शशि ललाट में सोह रहा है। हाथ में त्रिशूल-डमरु पकड़वाया। नंदी की सवारी है। एक ओर दुल्हे का वर्णन है दूसरी और आध्यात्मिक संदेश भी गोस्वामीजी साथ-साथ देते हैं। देवतागण भी अपने-अपने समाज के साथ तैयार हो गए। और भगवान शिव की बारात हिमाचल प्रदेश; पार्वती का पाणिग्रहण करने के लिए महादेव निकलते हैं। उसकी चर्चा कल करेंगे।

कथा-दर्शन

- 'रामचरित मानस' ने समग्र विश्व की चेतना को झंकृत कर दी है।
- भगवान की कथा संदेह, मोह और भ्रम तीनों को मिटाती है।
- ग्रंथ का एक प्रकाश होता है। ग्रंथ का एक उजाला होता है।
- निरंतर गतिशीलता का नाम है राम ; निरंतर विकसित होने का नाम है राम।
- जगत का आधार व्यापक ही हो सकता है, संकीर्ण नहीं हो सकता।
- साधना के लिए कोई उपकरण की जरूरत नहीं।
- कोई सद्गुरु, कोई बुद्धपुरुष हमारे जीवन का कर्णधार बने ये आवश्यक है।
- संत के दर्शन से पाप का नाश होता है। साधुदर्शन से प्रसन्नता बढ़ती है।
- ऐसी व्यक्ति को गुरु के लिए वरण करना जो स्वधर्मनिष्ठ है।
- हमारे नियम बंधन बन जाते हैं ; बुद्धपुरुष के जीवन के नियम घूंघरू बन जाते हैं।
- चरणपादुका विश्व में आश्रितों के लिए सबसे बड़ा आधार है।
- पादुका कृपा से प्राप्त होती है, कोई प्रयास से नहीं मिलती।
- पूर्णत: रिक्त हुए बिना असंगता नहीं आती है।
- सब वस्तु बुद्धि से समझ में नहीं आती ; कुछ श्रद्धा से समझनी पड़ती है।
- मुस्कुराने के लिए दर्शन जरूरी है और रोने के लिए स्मरण जरूरी है।
- सत्कर्म बलिदान के लिए हो, बदला लेने के लिए कभी न हो।
- पाप बहुत सूक्ष्म द्वार से प्रवेश कर सकता है।
- वृद्धावस्था पे परिपक्वता का परिचय है।
- अभिमान आदमी में अशांति की सृष्टि करता है।
- परिग्रह बाहर से होता है, अपरिग्रह अंदर से होता है।
- बूढ़ापा का भी एक सौन्दर्य होता है।

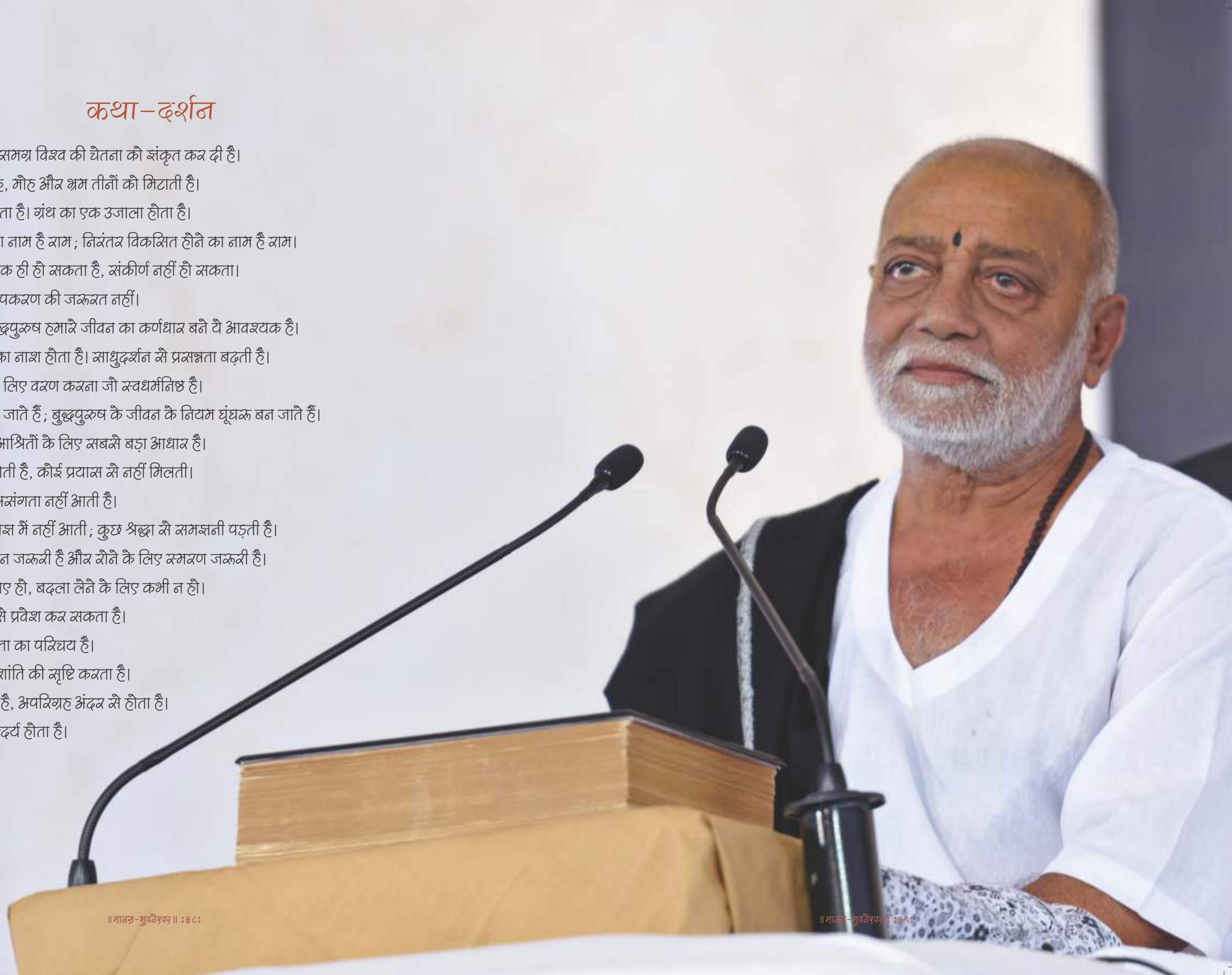

बुद्धपुरुष-सद्गुरु अखिलेश्वर होता है, सबकुछ होता है

मानस-भुवनेश्वर
: ६ :

बाप! भगवान भुवनेश्वर की नगरी में चैत्र नवरात्र के अनुष्ठानी दिनों में चल रही नव दिवसीय इस कथा के आज के दिन की कथा के आरंभ में फिर एक बार सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। 'मानस-भुवनेश्वर', जो इस नवदिवसीय कथा का केन्द्रबिंदु है, हम 'मानस' को केन्द्र में रखते हुए, इस विषय को केन्द्र में रखते हुए कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में कर रहे हैं। विभीषण रावण को कहता है कि 'है तात, राम केवल नरभूपाल नहीं है।' और रावण यदि प्रश्न पूछे कि तो फिर ये क्या है? तो विभीषण कहता है, 'ये भुवनेश्वर है।' और क्या है? बोले, काल के भी वो काल है, राम व्यापक है। मैं बहुत बार सोचता हूं। पीड़ा तो नहीं लेकिन चिंता जरूर होती है कि हम राम को कितनी छोटी-सी सीमा में बांधकर बैठ गये हैं! असुर का भाई कहता है, ये राम व्यापक है, ये ब्रह्म है, अजित है। ये क्या नहीं है? और उसी राम के बारे में गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं कि 'ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।' ये अजित भुवनेश्वर राम पूछ रहे हैं, लंका के रण मैदान में कि अभी तक लक्ष्मण क्यों नहीं आया है? तो इन दो शब्दब्रह्म को पकड़कर हम कुछ पावन दिनों में सत्संग कर रहे हैं।

आईये, अपने विषय में आगे बढ़ें इससे पूर्व कुछ जिज्ञासायें जो मेरे पास है। एक महत्त्व का प्रश्न है, 'आप इसी कथा के अंतर्गत कैलासी अवस्था का जिक्र किये थे। निवेदन है कि इस अवस्था कैसी होती है? कैलासी अवस्था मानी क्या? कुछ चर्चा हो तो अच्छी बात है।' कटक के ओडीसा के एक जिज्ञासु का प्रश्न है। कैलासी अवस्था के बारे में तो महापुरुष जिसको इसका अनुभव हुआ होगा वो ज्यादा कह सकते हैं। मैं तो इतना ही कहूं, कैलासी अवस्था का अर्थ है, कैलास एक पर्वत है स्थूल रूप में। और पर्वत कायम अचल होता है। कैलासी अवस्था का मेरा मतलब है, जो अंदर से स्थिर हो वो कैलासी अवस्था है, अचल। बड़ा मुश्किल है। व्याख्या तो बहुत सरल है लेकिन मौके समय पर उसको चरितार्थ करना बहुत कठिन है।

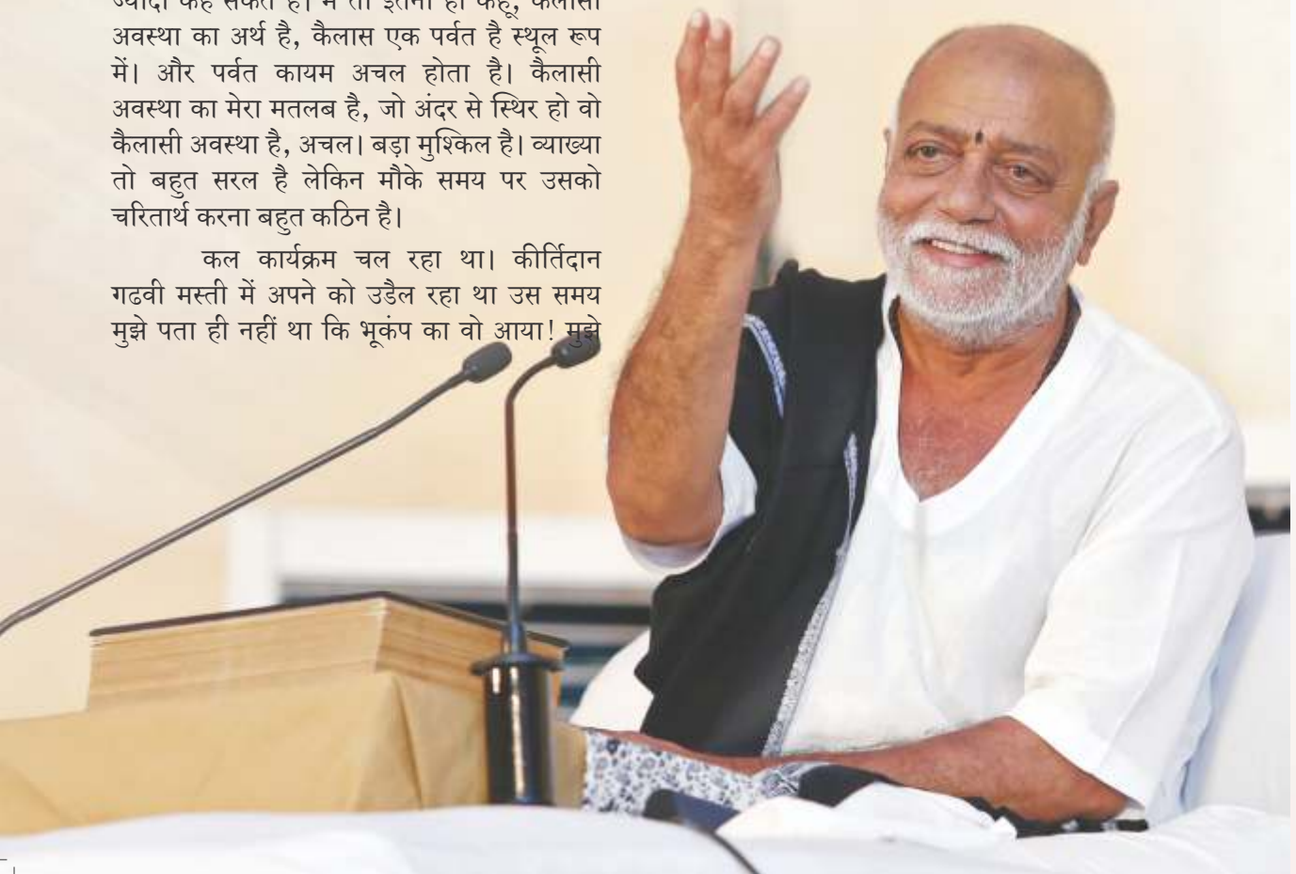

कल कार्यक्रम चल रहा था। कीर्तिदान गढवी मस्ती में अपने को उडैल रहा था उस समय मुझे पता ही नहीं था कि भूकंप का वो आया! मुझे तो बहुत अच्छा लग रहा था कि ये कौन झूला रहा है! सही में अच्छा लग रहा था। घबराने की बात का तो कोई सवाल ही नहीं था। और मुझे कभी-कभी कोई ओशो की किताब या तो कोई मेगझिन या तो कोई ओशो का कहा वक्तव्य का पन्ना फ़ाड़कर दे देता है और मैं कभी गाडी में बैठे-बैठे पढ़ लूं। मैं कोई नियमित तो वाचक नहीं हूं किसीका, सिवाय 'रामायण' और 'गीता।' मैं नियमित वाचक केवल दो ग्रंथों का हूं। नियमित स्वाध्याय तो मेरा 'मानस' और 'भगवद्गीता' है। लेकिन कोई महापुरुष, कोई ग्रंथ, कोई शास्त्र हाथ में आता है तो दर्शन करता हूं। उसमें एक बार ओशो ने एक बात सुनाई थी। मैंने कभी-कभी आपके सामने रखी भी है। जपान में बहुत भूकंप आते हैं, इसीलिए जपान के मकानों की रचना भी भूकंप के अनुकूल ही होती है कि गिरे तो भी कोई तकलीफ़ न हो ऐसी रचना है। कहते हैं कि एक जैन साधु के साथ घर में सत्संग हो रहा था। तो उसमें अचानक धरतीकंप हुआ। तो जिस घर में सत्संग चल रहा था वो घरवाला, यजमान परिवार, आगंतुक सत्संगी सब लोग भूकंप आते ही भागकर बाहर चले गये। वो महात्मा बैठा रहा। दस-पंद्रह मिनट के बाद सबको लगा कि अब कुछ खतरा नहीं है तो सब फिर आ गये और महात्मा को कहने लगे कि अब सत्संग शुरू करो। और एक साधक ने पूछा कि भूकंप आया तो आप को कोई असर नहीं हुई? हम तो दौड़कर भाग गये और आप बैठे ही रहे, गजब है! तो उस महात्मा ने कहा कि भूकंप आता है तब दुनिया में कोई भी नहीं बैठ सकता। सब भागते हैं। फ़र्क दिशा का होता है। आप लोग बाहर भागे, मैं अंदर भागा। और अंदर जो भागकर जाता है वो है कैलासी अवस्था, वो है अचलता। जिसको हमारी गंगासती कहती है-

मेरु रे डगे पण जेनां मनडां डगे नहीं,
मरने भांगी रे पडे भरमांड रे।
विपद पडे पण वणसे नहीं,
ई तो हरिजननां परमाण रे...

तो बाप! कैलासी अवस्था का पहला सूत्र ये बन जाता है कि आंतरिक स्थिरता। कठिन है। दूसरा, भजन की ऊंचाई कैलासी अवस्था का दूसरा परिचय है। एवरेस्ट पर तो कई लोग चढते हैं, अभी तक कैलास अनटच है। जिस व्यक्ति की भजन की बहुत ऊंचाई होगी वो कैलासी अवस्था का साधक मानना चाहिए। तीसरी वस्तु, कैलास बिलकुल श्वेत और धवल है। और सदा-सदा वो धवल रहता है। कैलासी अवस्था का ये तीसरा सूत्र है आत्यंतिक शुद्धि। जिसको गोस्वामीजी अपने दर्शन में कहते हैं, 'संत विशुद्ध मिलहि परि तेहि।' बिलकुल निर्मलता, श्वेत। कैलासी अवस्था का चौथा लक्षण ये समझना चाहिए, कैलास बहुत शीतल है। कैलासी अवस्था जिसकी होगी वो महापुरुष भी शीतल होगा। कभी आप उसको उग्र नहीं देख पाओगे। आप कल्पना कर सकते हैं कि बुद्ध कभी उग्र हुए हो? मैं तो सोच भी नहीं सकता कि कभी बुद्ध उग्र हुए हो। मैं ओर आप छोटी-छोटी बातों में उग्र हो जाते हैं! उग्रता आदमी को थोड़ा नीचे ला देती है। और अहंकार तो जमीनदोस्त कर देता है!

हिमालय किसीको कहता नहीं कि आप मेरी परिक्रमा करो। कैलास कहता नहीं, गिरनार कहता नहीं कि मेरी परिक्रमा करो। इनके ये कुछ अवस्था के गुण है वो ही हमें उसकी परिक्रमा करने के लिए मजबूर करते हैं कि तुम किये बिना रह नहीं सकोगे। और कैलास की पांचवीं और अंतिम अवस्था का नाम है, जिसकी भीतरी खोदकाम कोई नहीं कर सकता। बुद्ध के साथ दस-दस हजार भिक्षुओं का संग चलता था। गिने-चुने लोग उसको समझ पाये होंगे। बुद्धपुरुषों को खोदकर नहीं पहचाना जाता कि भीतर क्या है? कोई नहीं खोज पाता। खोजने जाता है वो शायद खो जाता है। मैं और आप जहां ऐसा कुछ देखे तो समझना ये व्यक्ति शायद कैलासी अवस्था में जी रहा है। दूसरे एक श्रोता का प्रश्न है, 'बापू, परसों आपने एक प्रश्न के उत्तर में गुरु, सद्गुरु और बुद्धपुरुष की व्याख्या की। गुरु को आपने ईश्वर के समकक्ष बताया; सद्गुरु को ईश्वर से भी उपर बताया। बापू, इस संदर्भ में एक जिज्ञासा है। यदि राम भुवनेश्वर है, शिव भुवनेश्वर है तो कहे कि सद्गुरु क्या है?' सद्गुरु क्या है उसका जवाब 'रामचरित मानस' में ओलरेडी दे दिया है-

एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गए कंभुज रिषि पाहीं।।
संग सती जगजननि भवानी।
पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी।।

राम भुवनेश्वर है तो सद्गुरु अखिलेश्वर है। ये सीधा जवाब है। तो राम भुवनेश्वर है। यद्यपि यहां शिव भी भुवनेश्वर है लेकिन शिव परम सद्गुरु है। शिव त्रिभुवन गुरु है। शिव परमबुद्ध तत्त्व है। इसीलिए 'रामचरित मानस' में उनके लिए शब्दप्रयोग हुआ है, 'अखिलेश्वर।' इश्वर है भुवनेश्वर। सद्गुरु है अखिलेश्वर। जिसमें सब कुछ हो वो अखिलेश्वर है। मेरे कहने का मतलब ये है कि अखिलेश्वर का अर्थ है कि ये सब कुछ है। सद्गुरु को मैं इस रूप में देखता हूं। वो अखिलेश्वर है। यहां लीलाक्षेत्र में राम भुवनेश्वर है लेकिन अध्यात्म क्षेत्र में जो तत्त्वत: जो है वो तो अखिलेश्वर है मेरी समझ में। ये तो अपनी अपनी निष्ठा की बात है। कोई दबाव नहीं लेकिन मेरी दृष्टि में बुद्धपुरुष-सद्गुरु अखिलेश्वर होता है, सबकुछ होता है।

आईये, इस भुवनेश्वर की चर्चा करते हुए कुछ ओर हम और आप साथ में मिलकर विशेष दर्शन करें। हमारे यहां एक वाक्य बहुत प्रचलित है। खास करके अध्यात्मवादी लोग बहुत युझ करते हैं, 'पिंडे ब्रह्मांडे।' जो पिंड में है वो ब्रह्मांड में है। भुवनेश्वर की परिभाषा चल रही है तब पिंड के अंदर, हमारे अंदर सात लोक है। और सात लोक हमारे बाहर है। यद्यपि हम जीव है लेकिन हमारे में भी सात लोक अंदर है, सात लोक बाहर है। अब जो बाहर लोक है उसका तो वर्णन पढ़ा है शास्त्रों में। इसमें एक लोक का नाम है चंद्रलोक। एक लोक का नाम है ब्रह्मलोक। एक लोक का नाम है विष्णुलोक। एक लोक का नाम है शिवलोक। एक लोक का नाम है सूर्यलोक। छठ्ठे लोक का नाम है जिसको सूरलोक कहते हैं अथवा तो स्वर्ग कहते हैं अथवा तो देवलोक कहते हैं अथवा तो इन्द्रलोक भी कहते हैं। लेकिन उसके लिए मैं एक सर्वसामान्य शब्द युझ करूंगा, 'सूरलोक।' चंद्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक, विष्णुलोक, सूर्यलोक, सूरलोक। और जिस पर हम रहते हैं ये पृथ्वीलोक। ये सब बाहर है।

तो ये सात लोक बहिर् है। अब बाहर विष्णुलोक कहां होगा, अल्लाह जाने! लेकिन नाम तो है। अब कैलासलोक, तो उसके लिए तो हम ये भी कह दे कि भाई ये लोक कैलास है चलो, ऐसा भी कह सकते हैं। स्वर्गलोक की चर्चा आती है तो स्वर्ग कहां है, मुझे खबर नहीं और स्वर्ग के साथ हमारी कोई रुचि भी नहीं। रामकथा सुनो और गाओ; स्वर्ग नहीं मिलता, स्व मिलता है। 'रामायण' स्व देती है, स्वर्ग नहीं। हमें अपना पता देती है। सूर्यलोक; वहां तो कौन रहते होंगे खबर नहीं! चंद्रलोक एक आदमी पहुंच, लौट आया एक पथ्थर लेकर। और पृथ्वीलोक पर हम जीते हैं। मेरे भाई-बहन, ये बहिर् लोक है। इनका जो सार है ये अंदर देखना पड़ता है। इनके साररूप में सात लोक हमारे भीतर है।

चंद्रलोक से शुरू करें। अंदर तो हमारा लोक है जो चंद्र के साथ जुड़ा हुआ है, उसको अध्यात्म जगत कहते हैं मन का लोक। मन ये अंदर का लोक है। मन एक भुवन है। मन एक स्वतंत्र लोक है। वेदांत में एक शब्दप्रयोग आता है 'मनोलोक।' चंद्र बाहर, मन भीतर। हम 'मन' शब्द बोलते हैं, मन से सोचते हैं। लेकिन तत्त्वत: मन क्या है ये मनलोक हमारे पास होते हुए भी उसके बारे में हम विशेष जान नहीं पाते हैं। कभी कृष्ण ने कुछ कह दिया, कभी योगवाशिष्टय ने कुछ कह दिया, कभी उपनिषदों ने कुछ कह दिया। उसकी व्याख्या पर हम मन के बारे में सोचते रहते हैं। लेकिन एक बात पक्की है चंद्रलोक बाहर है, मनलोक भीतर है। मनलोक को भी शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष लगता है। मन काला भी है, मन सफ़ेद भी है। मन अच्छा भी है, मन बुरा भी है। चंद्रलोक पर तो दुनिया जाएगी। नील आर्मस्ट्रोंगसाहब हो आये; ओर लोग जायेंगे। विज्ञान की उड़ान वहां कुछ भी कर सकती है। लेकिन मनलोक तक कितने लोग पहुंचे है? तब सुरतवाले कवि गनी दहींवाला मुझे याद आते है-

न धरा सुधी, न गगन सुधी, नहीं उन्नति न पतन सुधी।
अहीं आपणे तो जवुं हतुं फक्त एकमेकना मन सुधी।

कितनी बड़ी बात कर रहा है शायर! ये मेरी दृष्टि में उर्दू अद्वैत है। गज़ल की बोली में ये अद्वैत सिद्धांत है। हमें कहां पहुंचना है? मन तक। महात्माओं ने सिखाया, मन को बांधो, मन का निरोध करो। होता होगा; महात्मा जो कहे वो सच ही होगा। लेकिन इतना समय हमारे पास कहां कि निरोध करने में जाये! मेरे पास कई लोग आये और कहते हैं बापू, मेरा मन बहुत चंचल है। तो मैं राजी होता हूं। मन की चंचलता ही उसका सौंदर्य है ये न भूले मेरे भाई-बहन! मन चंचल न हो तो कुरूप है। चांचल्य ही मन का सौंदर्य है। जब मन निरोध होता है तब मन नहीं रहता है। मैं मेरे कुछ अनुभव अथवा तो जो गुरुकृपा से मेरी कुछ जानकारी या तो मेरी मान्यता हो, मैं आपके साथ शेयर करना चाहूं, मन को तोड़-फोड़ करने में समय बरबाद मत करना। मन से बातचीत करो। किसी पर दमन करना ये अच्छा नहीं है। मन के साथ बोध हो, निरोध नहीं। तुलसीने जो किया, सूरदास ने जो किया ये करो। सूरदास बातचीत करते हैं मन से, तकरार नहीं करते। हमने जीवन गवां दिया तकरार में! कोई कहे, ओमकार रखो, मन वहीं लगाओ; खाक लगेगा! उनका स्वभाव है, जहां उसकी सहज रुचि हो उसकी और ले चलो उसको। मन बड़ा प्यारा है। कृष्ण 'गीता' में कहते हैं, जितनी इन्द्रियां है इन सभी इन्द्रियों में मन मैं हूं। बातचीत करो मन से, दुश्मनी ठीक नहीं। सूरदास बातचीत करते थे।

मेरो मन अनंत कहां सुख पावै?

सूरदास को पता लग गया कि मेरा मन कोई जगह पर सुख नहीं पा सकेगा। ये मन कितना ही भागे-दौड़े पर जाएगा कहां? लौटकर अपने घर में ही आयेगा।

कभी कस्ती, कभी साहिल, कभी मज़धार से यारी,
किसी दिन लेके डूबेगी तुम्हारी ये समझदारी।

मासूम गाज़ियाबादी का शे'र है। तुम्हारी समझदारी या होशियारी ही तुम्हें डूबो देगी! मन से बातचीत करने में फायदा हुआ है इसीलिए मैं आपको ये कहता हूं बाकी आप अपने ढंग से 'मनलोक' की तलाश करे। चंद्रलोक बाहर है, मनलोक भीतर है। और वहां उपरवालें चंद्र को जो-जो लक्षण लागू होते हैं वो हमारे मनरूपी चंद्र में भी है, क्योंकि वो भी ग्रसित होता है। हमारा मन भी कभी मोह में ग्रसित होता है। वो कभी पूर्ण होता है। हमारा मन कभी-कभी पूर्ण प्रफुल्लित होता है।

मन मोर बनी थगनाट करे...

तो बहिर् चंद्र के अगल-बगल में जो वस्तु लग जाती है वो मनरूपी चंद्रलोक को भी लगती है। दूसरा लोक ब्रह्मलोक। जो बहिर् है, कहां है, खबर नहीं। तो बाहर ब्रह्मलोक है वो देखा नहीं है, वर्णन है। लेकिन अंदर जो है उसका सार, उसका सूक्ष्म रूप है जो हमारें पिंड में है वो लोक का नाम है बुद्धिलोक। मतिलोक, प्रज्ञालोक ये हमारे अंदर है। उस पर हम काम कर सकते हैं, उसका हम संशोधन कर सकते हैं। ब्रह्मलोक की हमारी औकात नहीं। एक बार कह देता है उपनिषद कि परमात्मा बुद्धि से पर है, केवल बुद्धि से नहीं मिलेगा। बुद्धि किसी बुद्धपुरुष की कृपा से प्रज्ञा का रूप धारण कर गई तो तुम्हारी बुद्धि दरवाजा बन सकती है, ऐसा भी उपनिषदों में संकेत है। बुद्धि जरूरी है। ये लोक को हमें संभालना चाहिए। ये पूरी दुनिया में जो तरक्की हो रही है ये बुद्धिलोक के कारण हो रही है। तो हमारे अंदर एक लोक है वो बुद्धिलोक है।

तीसरा लोक बाहर जो है जिसका नाम है विष्णुलोक। वो भी हमने देखा नहीं है। वैकुंठ के बारे मे सुना है। लेकिन देखा तो नहीं है। हमारे अंदर विष्णुलोक का एक अध्यात्मिक रूप है हमारा चित्त। चित्त को संग्राहक माना गया है शास्त्रों में। संग्राहक वृत्ति है चित्त की। चित्त बहुत फोटोग्राफी करता है। चित्तलोक जो है वो अंदर का विष्णुलोक है। तो विष्णुलोक बाहर है, चित्त लोक अंदर है। मेरी समझ में गुरुकृपा से कह सकता हूं, मन के साथ काम करना जरा कठिन पड़ता है, बुद्धि भी व्यभिचारिणी बनने में देर नहीं होती है साहब! लेकिन चित्त से समझौता बहुत आसान है। और चित्त शुद्धि होती है मेरी समझ में सद्गुरु की पूरी शरणागति और सद्गुरु के मुख से निकला हुआ कोई भी नाम, उसका स्मरण। चाहे वो नाम कोई भी हो। 'अल्लाह, अल्लाह' हो; 'साहेब, साहेब हो', क्या फ़र्क पड़ता है? हम लोगों ने बहुत संघर्ष

राम भुवनेश्वर है तो सद्गुरु अखिलेश्वर है। यद्यपि यहां शिव भी भुवनेश्वर है लेकिन शिव परम सद्गुरु है। शिव त्रिभुवन गुरु है। शिव परमबुद्ध तत्त्व है। इसीलिए 'रामचरित मानस' में उनके लिए शब्दप्रयोग हुआ है, 'अखिलेश्वर।' इश्वर है भुवनेश्वर। सद्गुरु है अखिलेश्वर। जिसमें सब कुछ हो वो अखिलेश्वर है। मेरे कहने का मतलब ये है कि अखिलेश्वर का अर्थ है कि ये सब कुछ है। सद्गुरु को मैं इस रूप में देखता हूं। मेरी दृष्टि में बुद्धपुरुष-सद्गुरु अखिलेश्वर होता है, सबकुछ होता है।

पैदा किये धर्म के नाम पर! चित्तशुद्धि आसान है। चित्त संग्राहक है। गुरु की कृपा से जिसको डिलिट करना आता है; चित्त में जो संग्राहक है भूत के, अतीत के कितने-कितने चित्र, वर्तमान के चित्र और कल्पना में कितने चित्र अभी बाकी है; ये करे, ये करे, उसको गुरु की कृपा से जिसको डिलिट करना आ जाता है उसको कहते हैं चित्तशुद्धि। बाहर है शिवलोक, अंदर है अहंकार का लोक। ये सब तुलसीदर्शन है। मेरी तो केवल प्रस्तुति है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

तो बाप, अहंकार का भी लोक हमारे अंदर रहता है। इस लोक के साथ भी काम करना पड़ता है साधना में। बड़ा मुश्किल है। छोटी-छोटी बात में अहंकार हमें परेशान करता है। मेरी समझ में, आप कोई भी ईष्टदेव के उपासक हो, मुबारक। लेकिन अहंकार से छुटकारा प्राप्त करना है तो शंकर की उपासना करनी ही पड़ेगी। यु मस्ट! क्योंकि महादेव त्रिभुवन गुरु है। सब में जब हरि दिखने लगता है तब अहंकार समाप्त होता है। अहंकार तो दूसरे को देखने से होता है न कि उसका पद इतना ऊंचा, मेरा उससे ऊंचा! जब सृष्टि में सब शिवरूप हो जाये। भगवान महावीर स्वामी का एक बड़ा सूत्र है। उसको जब पूछा गया कि आप अहिंसा की बात करते हैं, आपका मूल सिद्धांत अहिंसा है। पांच महाव्रत तो है ही अप्रभाव, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, अकाम। इनमें मुख्य है अहिंसा। लेकिन महावीर स्वामी को जब पूछा गया कि अहिंसा की स्पष्ट परिभाषा और सीधी परिभाषा क्या है? बोले, अपने अतिरिक्त दूसरे को देखना अहंकार है। यहां कोई दूजा है ही नहीं। इतनी सूक्ष्म अहिंसा की परिभाषा शायद महावीर प्रभु ही कर सकते हैं। ये मैं और ये तू, ये कोई दूसरा देखने में ही हिंसा प्रगट हो जाती है। और अहिंसा तो बाहर से होती है, हिंसा तो अंदर से होती है। अचौर्य बाहर से होता है, चोरी अंदर से होती है। परिग्रह बाहर से होता है, अपरिग्रह अंदर से होता है। अप्रमाद बाहर से होता है, भीतर से प्रभाव शुरू है। और मैं तो दुनिया में घूमता रहता हूं आपकी शुभकामना से, कई संप्रदाय को मैं देखता रहता हूं। जो संप्रदाय शिव का अपराध करता है वो संप्रदाय अहंकार से मुक्ति असंभव।

शिव की शरण में जाना ही होगा। अभिमान आदमी में अशांति की सृष्टि करता है। काम वस्तु थोड़ी देर सुख तो देता है लेकिन फिर निराशा प्रदान करता है। लोभ तो फंदा है। नारद में अहंकार आया रूप का। उसके कारण बहुत-सी बीमारी आ गई नारद में 'रामायण' के 'बालकांड' में। लेकिन सबके समापन में जब विश्राम पाना था तब भगवान ने क्या कहा?

जपहु जाइ संकर सत नामा।

हे नारद, शंकरना नामनी माळा फेरव, तब तेरा अहंकार छूटेगा। तो शिवलोक है बाहर, अंदर है अहंकारलोक। अहंकार के लोक से इस बंधन से हमारी लोक मुक्ति तभी होगी जब शिव आराधना होगी। तो, चंद्रलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक। मन, बुद्ध, चित्त, अहंकार। पांचवां लोक है सूर्यलोक। यद्यपि वहां कोई रह नहीं सकता लेकिन है तो सही। अपना अस्तित्व तो है। जिसके कारण हम सब जी रहे हैं। लेकिन बाहर रहा सूर्यलोक का पिंड में रहा जो लोक है उसका नाम है ज्ञानलोक। सूरज ज्ञान का प्रतीक है। जैसे सूरज की किरण निकलते अंधेरा मिट जाता है वैसे ज्ञान प्रगट होते ही संदेह, भ्रम, अंधेरा मिट जाता है। तो सूर्यलोक बहिर् है, ज्ञानलोक भीतर है। और मेरा स्वभाव, मेरी रुचि, मेरी गति तो यही रही कि अंततोगत्वा केवल और केवल एक सद्गुरु ही है। लेकिन शास्त्र के नियमानुसार भी यही गति है। अंदर के ज्ञानलोक होने पर भी हमें उसका प्रकाश दिखता नहीं और अंधेरा छाया हुआ है। अंदर मोह, तम बहुत भरा हुआ है। छठ्ठा लोक है सूरलोक देवता का। सूरलोक बहिर् है। देखा नहीं है, सुना है। अंदर जो लोक है उसका नाम है 'भगवद्गीता' के न्याय से अभयलोक। अभय कभी बाहर से नहीं आता है, अभय जिसको भी आया, अंदर से आया है। आदमी अभय होना चाहिए। कई लोग होते हैं, बाहर से तो इतने-इतने शस्त्र रखते हैं लेकिन अंदर से बहुत भयभीत रहते हैं। अभय भीतरी अवस्था का नाम है। अभय लोग कैसे हमारे ख्याल में आये तो एक उपाय 'रामायण' में बताया है-

अभय होहि जो तुमहि डेराई

अपने बुद्धपुरुष से थोड़ा डरते रहना। और डरना मिन्स? कहीं मेरा अविवेक न हो जाये, कहीं मेरे कारण दाग न लग जाये। वो दाता तो बोलेगा नहीं। मैं फिर एक बार कहूं कि बुद्धपुरुष का दिल दुभेगा ही नहीं। नहीं, नहीं, नहीं। लेकिन मान लो कोई नियतिवश किसी साधुजन का दिल दुभ भी गया तो कोई एक व्यक्ति का दिल नहीं दुभता है। स्थूलरूप में देखो तो एक महापुरुष एक बुद्ध का दिल आप दुभा दो तो दस हजार भिख्खु का दिल दुभ जाएगा। छोड़ो, दुनिया का दिल दुभे कोई आदमी केर न करे लेकिन साधु का दिल दुभाने से हरि का दिल दुभना है। अस्तित्व फिर क्षमा नहीं करेगा। साधु तो क्षमा ही करेगा। अस्तित्व दंड देगा।

तो कुछ बातों में साधक सावधान रहे। बहुत जप-तप करने से जो नहीं होता वो थोड़ा गुरुपद विवेक से हो जाता है। बाहर है सूरलोक, भीतर है अभयलोक। बहिर् लोक जो है सांतवां जिसको मैं कहता हूं पृथ्वीलोक। अंदर का पिंड में रहा लोक जो मैं एक बार संकेत के रूप में भी कह चुका हूं वो है प्रेमलोक। पाताल है सत्यलोक एक अर्थ में। पृथ्वी है प्रेमलोक। पृथ्वी प्रेम की भूमिका है इसीलिए हमारे अंदर जो प्रेमलोक है इसका विस्तार करो।

ज्योत से ज्योत जगाते चलो,
प्रेम की गंगा बहाते चलो।

तो पृथ्वी पर जो प्रेम की गंगा है हमारे एक आंतरिक पिंड में पृथ्वीतत्त्व है, इसका विस्तार किया जाये और वो है प्रेमलोक। जिगर मुरादाबादीसाहब ने कह रखा बहुत पहले कि-

उनका फ़र्ज क्या एहले-सियासत जाने।
मेरा पैगाम मुहब्बत है जहां तक पहुंचे।

तो प्रेमतत्त्व ये हमारा आंतरिक लोक है। बुद्धपुरुषों की नस-नस में सत्य बहता है। बुद्धपुरुषों की नस-नस में प्रेम बहता है। बुद्धपुरुष की नस-नस में करुणा बहती है। ये तीनों का ये विग्रह होता है। पृथ्वीलोक जिसको व्यासपीठ प्रेमलोक कहती है उसका विस्तार किया जाय। तो सात बहिर्लोक, सात अंतरलोक। ये है चौदह भुवन।

तो, 'लछिमन कहा बूझ करुनाकर।' वहां की भुवनेश्वर की चाहे वो राम चाहे शिव हो लेकिन परिभाषा प्राप्त हो जाती है कौन भुवनेश्वर? परख क्या है? तो इस पंक्ति का जो आखिरी शब्द है 'करुणाकर।' जो करुणाकर है वो भुवनेश्वर है। चाहे शिव कहो,

'कर्पूरगौरं करु वतारं संसारसारं भुजगेन्द्र...' और 'बंदउ रघुपति करुणानिधान'-'विनयपत्रिका।' तो करुणाकर जो तत्त्व है वो फिर भुवनेश्वर है। करुणाकर तत्त्व जिसमें भी पूर्ण मात्रा में दिखाई दे वो हमारे लिए ऐसा हमारा कोई गुरु चाहे वो भुवनेश्वर हो, चाहे सद्गुरु के रूप में अखिलेश्वर है वो भुवनेश्वर है। जो करुणाकर है वो गुरु के रूप में भुवनेश्वर है। सद्गुरु के रूप में अखिलेश्वर है।

अब थोड़ा कथा का क्रम लूं। कल हम कथा के क्रम में बातें कर रहे थे कि स्वार्थी देवताओं ने भगवान शिव को शादी के लिए राजी किया। और भगवान शंकर प्रभु के आदेश को शिरोधार्य करके, हृदय में इस आज्ञा को धारण करके ब्याह के लिए राजी होते हैं। शिवजी ने अपने गणों को कहा कि दुनिया में हमारे जितने भूत-प्रेत रहते हैं इन सब को निमंत्रित किया जाय। बारात हिमाचल प्रदेश पहुंची है और सम्मान के लिए हिमाचलवासी लोग आये हैं। भगवान शंकर का ये रुद्र रूप देखकर बहुत लोग घबराये! कोई भयभीत, कोई मूर्छित, सब गिर पड़े! द्वार पर आये शिव। पार्वती की माता महाराणी मयना आरती सजाकर अपने दामाद का सम्मान करने के लिए आती है। शिव का ये रुद्र और भीषण रूप देखकर मयना मूर्छित हो जाती है!

नारदजी, सप्तऋषि और स्वयं हिमालय आये निज मंदिर में। नारद ने मयना को कहा कि महाराणी मयना, तेरी भ्रांति छोड़। तू मानती है कि पार्वती तुम्हारी बेटी है? नारद ने सबके भ्रम को तोड़ा कि ये आदि शक्ति पराम्बा है और जिसका हम सम्मान न कर पाये वो शिव परमात्मा है। केवल इतना ही कहना है कि हमारे घर में ही शक्ति होती है, हमारें द्वार पर शिव होते हैं लेकिन कभी-कभी नारद जैसा संत जब तक हमें परदा हटाकर बताये ना तब तक हमें पता नहीं लगता। सद्गुरु ने ये भेद बता दिया। विवाहमंडप पर शिव पधारे। यहां सखियां पार्वती को दुल्हन के शृंगार में ले आई है। लोकरीति और बेदरीति से विवाह की विधि होने लगी है। कुछ दिन बारात वहां रुकी। अब हिमालय और मैना और हिमालयवासी अपनी कन्या को बिदा दे रहे हैं। और कन्या की बिदाई स्वाभाविक माता-पिता के लिए जरा कठिन-सी होती है। हिमालय इतने महान है लेकिन बेटी के बिदाई के वक्त वो पिघल गये हैं।

शिव, पार्वती और समाज कैलास पहुंचते हैं। शिव और पार्वती का सुंदर विहार शुरू होता है। कुछ दिन बीतें हैं। कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकस्वामी के छः मुख है। पुरुषार्थ का प्रतीक माना गया है कार्तिकेय। हमारा पुरुषार्थ जो होता है उसके छः मुख होते हैं। और छः मुख का बराबर अभ्यास करके जो अपने क्षेत्र में पुरुषार्थ करता है वो पूज्य भी बनता है, प्रिय भी बनता है और परिणाम भी प्राप्त करता है। कार्तिकेय पुजनीय हो गये, प्रिय हो गये और ताडकासुर को मारके देवताओं को सुख का वरदान और परिणाम में सुख दिलाया। फिर एक बार भगवान शिव कैलास के वटवृक्ष की छाया में विराजमान है। पार्वती भी अवसर देखकर शिव के पास आती है और भगवान शंकर से जिज्ञासा करती है कि मुझे रामतत्त्व समझाने के लिए रामकथा सुनाओ।

शिव है विश्वास, पार्वती है श्रद्धा। उसके दो पुत्र। उसके व्यवहार जगत के नाम तो गणेश है, कार्तिकेय है। लेकिन अध्यात्मजगत के उसके नाम है विवेक और पुरुषार्थ। चार व्यक्ति का परिवार। लेकिन अब एक नया प्रसव होनेवाला है। वो पुत्र के रूप में नहीं, शिव और पार्वती के संवाद से जो होता है वो 'रामचरित मानस' प्रगट होता है। शिव का परिवार तभी पूरा होता है जब 'रामचरित मानस' प्रगट होता है। मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि हमारा परिवार भी आध्यात्मिक रूप में तभी पूरा माना जाएगा जब हमारें परिवार में 'रामचरित मानस' प्रगट होता है। 'मानस' की चोपाईयां गाई जाय तभी परिवार को पूर्ण समझना। शिव और पार्वती के वार्तालाप से एक कन्या प्रगट हुई है, एक कविता प्रगट हुई है। उसी का नाम है 'रामचरित मानस।' दो बेटे और एक ये कन्या। और ये एक ऐसी कन्या है जिसका पति कोई हो ही नहीं सकता। सब बच्चें ही हो सकते हैं। कोई ये नही कह सकता कि 'रामायण' मेरा अधिकार नहीं! हम उसकी गोद में खेल सकते हैं, हम मौज कर सकते हैं। ये हम सबकी जन्ममाता बनकर बैठी है। ऐसी ये 'मानस' की कथा रूपी एक दिव्यता शिव और पार्वती के संवाद से प्रगट होती है और शिव के मुख से वो कथा पार्वती के सन्मुख गाने की तैयारी होती है।

गुरु के प्रभाव को मत देखो, उनके स्वभाव को देखो

मानस-भुवनेश्वर
: ७ :

कथा के सूत्रात्मक प्रसंग है उसमें प्रवेश करें इससे पूर्व आज रामनवमी का परम पावन दिन, 'मानस'जयंती भी है और रामजयंती भी है। तो आज के परम पावन दिन पर आप सभी को, पूरे संसार को, त्रिभुवन को, पूरे जगत को, चौदह भुवन को भुवनेश्वर की व्यासपीठ से बहुत-बहुत बधाई हो। दूसरी बात, 'भये', जगत में रामकथा के गायक जितने हो गये; 'अहहिं' जो है, गाते हैं और जो भविष्य में होंगे इन सभी रामकथा के गायकों अथवा तो भगवान की कथा के गायकों को मैं व्यासपीठ से आज के दिन प्रणाम करता हूं। शिव से लेकर सब में शिवांश है इसीलिए प्रत्येक जीवों को भी व्यासपीठ से आज के दिन मेरा प्रणाम है। छोटे से छोटे रामकथा के यज्ञ में आहुति देनेवाले सभी को भी व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। किसी भी रूप में 'रामचरित मानस' पर जिन्होंने अपने विचार और लेखनी चलाई हो, इन सभी को भी इस व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। तो बार-बार रामनवमी की बधाई देता हुआ मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। 'मानस'जयंती मुबारक हो बाप! मुबारक हो। और मुझे बड़ी प्रसन्नता है, व्यासपीठ के प्रति जिनका समर्पण है इन सभी लोगों ने हजारों की नहीं लाखों की संख्या में 'रामचरित मानस' को हृदय से लगाया है। इन सभी 'मानस' प्रेमीओं को भी मैं आज व्यासपीठ से प्रणाम करता हूं। और ये सभी आनंद की जो कूख है, जो मूल भूमि अथवा तो भूमिका है वो तलगाजरडा की मिट्टि के उस घर के एक कोने को मेरा प्रणाम है जहां से रामकथा लेकर मेरा अभियान चला है। बहुत-बहुत मुबारक हो। बहुत-बहुत बधाई हो।

'मानस-भुवनेश्वर', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। विभीषण ने भगवान राम को कहा कि हे भाई, हे तात, राम नरभूपाल नहीं है। ये भुवनेश्वर है और काल के भी काल है। और यहां तुलसी और 'रामचरित मानस' स्वयं कहता है कि-

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर।।

जो व्यापक है, जो ब्रह्म है, जो अजित है ऐसा भुवनेश्वर भगवान पूछ रहे हैं लंका के रणमैदान में कि लछिमन कहां है? लेकिन आज का आरंभ लंका के मैदान से किया जाय कि लंका के रणमैदान में भी तुलसी ने एक भुवनेश्वर का संकेत किया है। और वो भुवनेश्वर है लक्ष्मण स्वयं। ये जो

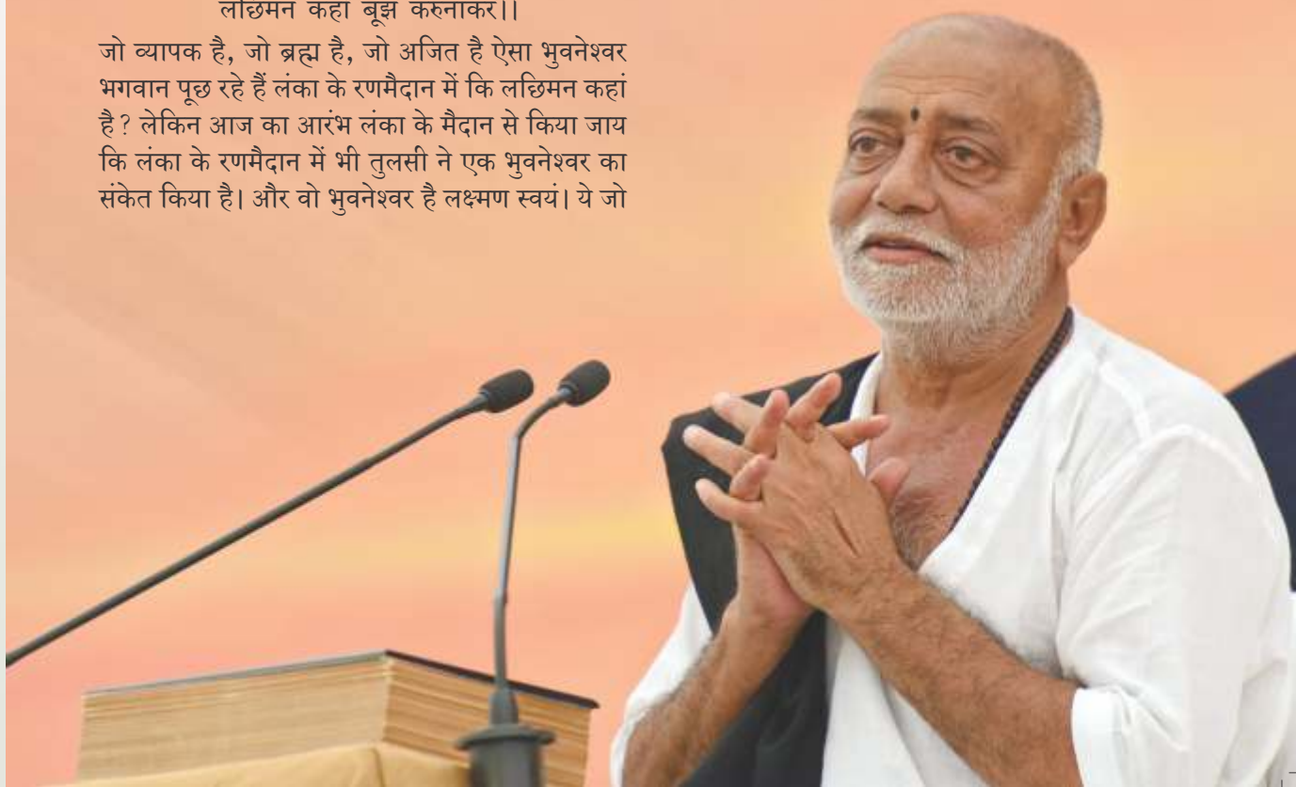

पंक्ति 'लंकाकांड' से ली है, 'ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।' इसका एक अर्थ ये भी किया गया है।

मैं तो रामकथा 'लंकाकांड' तक पढ़ा हूं। इनमें भी रावण मरा नहीं था, तब तक मैं पढ़ा हूं क्रमशः। उसके बाद दादा थोड़े नादुरस्त हुए और फिर बस, उसने नज़रों से दुआ दी थी कि आ गया। अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं जहां तक पढ़ा हूं वहां के अर्थ आपके सामने बीच में स्मृति आते ही बताता रहता हूं। दादा का कहना था कि यहां लक्ष्मण के लिए भी ये सब विशेषण है। लक्ष्मण स्वयं व्यापक है। तो लक्ष्मण कैसे व्यापक? ये तलगाजरडा का एक छोटा-सा कोना बोल रहा है! गोपीचंदन का वैष्णवी तिलक और उपर पघड़ी और इस मुख से निकला हुआ ये वचन है कि लक्ष्मण भी व्यापक है। कैसे? तो 'बालकांड' में इसका आधार बताया दादा ने-

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।

बेटा, लक्ष्मण यदि सकल जगत का आधार है तो ये व्यापक है। 'इति सिद्धम्' गुरु वचन पर। जगत का आधार व्यापक ही हो सकता है। जगत का आधार संकीर्ण नहीं हो सकता। तो लक्ष्मणजी है व्यापक। और लक्ष्मण यदि गुरु है, आचार्य है; लक्ष्मण को 'रामायण' के मनीषिओं ने जीवाचार्य कहा है। लक्ष्मण है जीव के गुरु। और गुरु संकीर्ण नहीं हो सकता, गुरु व्यापक ही हो सकता है। संकीर्ण हो वो गुरु नहीं। सीधा-सादा अर्थ। तो 'व्यापक ब्रह्म...' लक्ष्मण है ब्रह्म। अब वो कैसे? लक्ष्मण कैसे ब्रह्म हो सकता है? वहां उपनिषद का आधार है, 'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति।' जो ब्रह्म को जान जाता है वो स्वयं ब्रह्म हो जाता है। लक्ष्मण के समान राम को किसने जाना होगा? पूरा का पूरा राम को जाना है और इसीलिए तो भगवान ने इतना उसे प्रेम किया है। तो ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म सिद्ध हो जाता है उपनिषद के श्रुति के अनुसार। तो लक्ष्मणजी ब्रह्म भी है। और तत्त्वदृष्टि से तो सब ब्रह्म है। 'सर्व खलु इदं ब्रह्म।' तो इससे भी ये सिद्ध होता है लक्ष्मणजी ब्रह्म है। व्यापक भी है, ब्रह्म है, अजित है। लक्ष्मण को कौन जीत सकता है? कोई नहीं जीत पाता। आप कहेंगे कि लंका के रणमैदान में तो इन्द्रजित ने मूर्छित भी किया, फिर औषधि भी लानी पड़ी। ये सब तो हुआ है। बाप! ये लीला है। लक्ष्मण अजित है। उसको कोई नहीं जीत सकता। वो अपने आप हार जाये ये उनका खुद का टेस्ट है। ये उनका स्वाद है। ईश्वर कई बार हारता है। मैंने आगे भी मेरे निवेदन में कहा है कि भगवान हारता है लेकिन पराजित नहीं है, अजित है। ये अजेय है। कोई उसको जीत नहीं पाता। लक्ष्मण अजित है उसको कोई पराजित नहीं कर सकता।

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।

जो व्यापक है, जो ब्रह्म है, जो अजित है, ऐसा भुवनेश्वर जो मेरा लक्ष्मण है; करुणाकर पूछते हैं, वो कहां है? प्रभु ने पूछा लक्ष्मण के बारे में। और एक स्पष्ट प्रमाण 'लंकाकांड' अंतर्गत कि लक्ष्मण है भुवनेश्वर।

इतना धमासाण युद्ध हुआ लंका में यानी 'लंकाकांड' में और रावण इतना भयंकर सिद्ध होने लगा तब लक्ष्मणजी ने देखा कि मेरी सेना एकदम विकट है। अपनी कटि पर से हाथ में धनुषबाण लेकर कृद्ध होकर लक्ष्मणजी राम के चरणों में प्रणाम करके खड़े होते हैं। और लक्ष्मणजी ललकारते हैं कि हे रावण, सामने देख! मैं तेरा काल हूं। ये छोटे-बड़े रिंछ-बंदर को क्यों मारता है? और रावण ने देखा कि रामानुज ललकारता है तो कहता है, हे सुतघाती! हे मेरे पुत्र को मारनेवाला, मैं तुम्हें ही खोज रहा हूं। और फिर रावण भयंकर तीर छोड़ता है। लक्ष्मणजी उसके तिल के समान टुकड़े कर देते हैं। फिर एक दृश्य आता है 'मानस' में कि रावण के दस मस्तक में लक्ष्मणजी ने एक-एक मस्तक में सो-सो बाण मारे। और ऐसे लग रहे हैं, तुलसी कहते हैं कि बाण जब रावण के भाल में जाते हैं तो लगता है कि पर्वत की गुफ़ाओं में मानो सर्प जा रहे हैं! फिर 'मानस' में लक्ष्मणजी आखिर में सो तीर रावण की छाती में मारते हैं, हृदय में मारते हैं और रावण गिर पड़ता है। तब रावण को लगा कि अब में गया! उसी समय ब्रह्मा ने जो सांग दी थी उसको उठाकर वो शक्ति उठाकर रावण लक्ष्मण के सामने अनिवार्य संजोग में प्रहार किये जानेवाला ये शस्त्र का प्रयोग करने के लिए तैयार होता है। तब मेरे गोस्वामीजी लक्ष्मण भी भुवनेश्वर है ऐसा संकेत कर देते हैं-

सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
परयो बीर बिकल उठावो दसमुख
अतुल बल महिमा रही।।

ब्रह्मा की दी हुई शक्ति रावण लक्ष्मण के उपर फैंकता है। 'सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति', भयंकर शक्ति; किसको लगी? अनंत है लक्ष्मण। अनंत केवल ब्रह्म हो सकता है। यहां लक्ष्मणजी का नाम अनंत है। अनंत ब्रह्म होता है। अनंत व्यापक होता है। अनंत को कोई जीत नहीं सकता। अनंत की छाती में शक्ति लगी। विफल होकर वीर गिर पड़ा धरती पर। और दस मुख उस समय लक्ष्मणजी को उठाना चाहता है। तुलसी लिखते हैं, 'अतुल बल महिमा रही।' 'अतुल बल' शब्द यहां रावण के लिए है। 'अतुल बल महिमा रही।' रह गई; वहीं की वहीं रह गई! क्यों?

ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।

जो लक्ष्मणजी शेषावतार है उनके हजार मुख है लेकिन उनमें से एक मस्तक पर ब्रह्मांड ऐसा रहता है जैसे मिट्टी की एक रज पड़ी हो। इससे बढ़िया भुवनेश्वर कौन हो सकता है? तुलसी कहते हैं, ये मूढ़ रावण इस लक्ष्मण को उठाना चाहता है! ये त्रिभुवन धनी है। हो गया भुवनेश्वर।

तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी।

तो 'मानस-भुवनेश्वर' में 'लंकाकांड' का ये छोटा-सा एक दृश्य, इसमें तुलसीजी 'त्रिभुवन धनी' कहकर लक्ष्मण का भुवनेश्वर के रूप में स्मरण करते हैं। तो लक्ष्मण स्वयं है भुवनेश्वर।

मुझे आज एक युवक ने पूछा है, 'बापू, आपको 'रामचरित मानस' जन्म की बधाई। जब 'रामायण' नहीं थी तब मनुष्य कौन से ग्रंथों द्वारा अपनी सोई हुई चेतना को जगाता था?' दुनिया कभी वांझ नहीं रही। सुषुप्त चेतना को बार-बार सचेत करने के लिए कई ग्रंथ आये हैं हमारे यहां। भगवान वेद आये स्वयं। उपनिषद आये, आगम-निगम आये, ब्राह्मण ग्रंथ आये। कितने-कितने ग्रंथ हमारे यहां आये! और इसी शृंखला में आया 'महाभारत'; वाल्मीकि का 'वाल्मीकि रामायण।' लेकिन 'रामचरित मानस' ने हद कर दी है! ये मैं गाऊं इसीलिए नहीं; मेरा अनुभव बोल रहा है। इसने जितनी चेतना को जाग्रत करने का विश्व में उपकार किया है, शायद कम हुआ है। तो पहले ही लोग अपनी सुषुप्त चेतनाओं को किसी न किसी रूप में ग्रंथों का सेवन करके वो करते रहते थे। लेकिन 'रामचरित मानस' ने सामूहिक चेतना को जाग्रत की है। समग्र विश्व की चेतना को झंकृत कर दी है 'रामचरित मानस' ने।

तो 'रामचरित मानस' ने अनादि काल से, जब से शिव ने रचा तब से व्यक्ति की सोई चेतना को जाग्रत करने का बहुत उपकारक अभियान किया है। तो ऐसे जब मेरी पढ़ाई हो रही थी तब ऐसे-ऐसे सभी संदर्भों को लाकर समझाया जाता था। ये सब गुरुमुखी है, ग्रंथमुखी नहीं है। और मेरे श्रोताओं को, मेरी व्यासपीठ के प्रति श्रद्धा रखनेवालों को एक बात कहनी भी है कि अपने गुरु के, अपने सद्गुरु के, अपने बुद्धपुरुष के प्रभाव मत देखो, प्लीज़; उनके स्वभाव को जानो। हम चुक जाते हैं; गुरुप्रभाव में आ जाते हैं! बहुत सुंदर बोल लेते हैं कोई, पकड़ लेते हैं! बांध देते हैं शब्द प्रभाव में, वाक्छटा में! प्रभाव की महिमा जरूर है बाप! लेकिन स्वभाव जानो। हम जैसों के लिए गुरु ही परमात्मा है, जिसका हम स्वभाव जाने। और जो आदमी अपने बुद्धपुरुष का स्वभाव जान लेता है उसके सभी के अनुभव करीब-करीब ठीक रहने लगते हैं। इसलिए बहुत इन्वोल्व होना होता है गुरु में; तभी स्वभाव जाना जाता है। मैंने कई बार आपके सामने कहा कि भगवान राम की स्वयं मौजूदगी में केवल नव या तो ग्यारह लोग ही उसको ठीक से जान पाये हैं। तुलसीदास ने तो तीन ही नाम दिए हैं।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।।

और ध्यान देना बाप! ईश्वर है ये अपना स्वभाव कह सकता है, लेकिन गुरु प्रगट नहीं कहते कि मेरा स्वभाव सुन। करीब-करीब गुरु कह भी सकता है लेकिन गुरु सामनेवाले की पात्रता को बहुत गौर से अभ्यास करता है कि अनधिकार ये थोड़ा वो न हो जाये इसीलिए गुरु के स्वभाव को बहुत धीरे-धीरे जैसे सवा भगत ने कहा कि 'गुरुना घरना बधा खूणा जोई लेवा।' गुरु अपने जूते जहां उतारता है वहां बैठनेवालें शास्त्री हो गये हैं! न कभी स्वाध्याय किया, न कभी पारायण किया! गुरु तो नहीं स्वभाव बताएगा लेकिन हमें जानना होगा। और इसीलिए हमें बहुत अंतरंग यात्रा करनी होती है। भरत जान गये थे प्रभु के स्वभाव को। शरीर से दूर रहकर भी प्रभु के स्वभाव को पहचान गये थे। मेरी व्यक्तिगत बात हो

जाएगी लेकिन आप मेरे ही है; मैं बिलकुल दिल से कहूं, दादा जेवो में क्यांय स्वभाव जोयो नथी के सांभळ्यो नथी। मैं डंके की चोट पे दुनिया को कह सकता हूं कि ऐसा स्वभाव न मैंने सुना है, न देखा है। ये तुलसी की चौपाई मेरे लिए खरी उतरती है-

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ।
केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ।।

सब की ये निष्ठा होनी चाहिए अपने बुद्धपुरुष में। वो बोलेगा नहीं अपना स्वभाव क्योंकि उनको तुम्हारें हाथों से पूजा नहीं चाहिए। अपने बुद्धपुरुष में हम जब ये खोज कर पाते हैं तब कौन दूसरा ईश्वर? कौन दूसरा हरि? किसकी जरूर है फिर? तब मैं भरत की तरह गा सकता हूं-

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ।
अपराधिहु पर कोह न काऊ।।

गुरु और प्रभु के स्वभाव पर एक कथा करनी है।

एक सूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला।
सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।।

तो मेरे भाई-बहन, प्रभु कह सकते हैं कि मेरा स्वभाव ऐसा है; इतने-इतने लोग जानते हैं। गुरु का स्वभाव तो पहचानना पड़ता है। और जो उसका स्वभाव पहचान लेता है उसको पढ़ने की क्या जरूरत? उसने सब कुछ पा लिया; सब कुछ मिल गया। तो गुरु की पादुका जहां होती है वहां बैठने से भी आदमी पहुंच जाता है। ऐसी बुद्धपुरुषों की महिमा है। तो कुछ पढ़ाई ऐसे चली उसका मुझे आनंद है। बड़ा भाग्य समझता हूं।

तो दादा इस तरह बताते थे कि ये लक्ष्मण भी भुवनेश्वर है। वो दिन जो गोल्डन दिन रहे। हम रात को राम मंदिर के ओटे पर बैठते रहते थे। पुराना राममंदिर, जहां दादा भी बैठते थे, पिताजी भी बैठते थे, मैं भी वहीं बैठता था। तीन पीढ़ी का तपा हुआ ये आसन था साहब! आनंद है। और रात को हमारे त्रिकमबापू, नरहरिबापू, छगनबापू, बंसीबापू, रामदासबापू ये हमारे सब जो हरियाणी परिवार तलगाजरडा का था। हम रात को बारह बजे, एक बजे ऐसे बैठे रहते थे छोटे छे तब, उस समय की बात है। बारह बजे तक कोई तकलीफ़ नहीं होती थी। लेकिन बारह बजे के बाद यदि समय हुआ ही, गुरु गोतवा नीकळतो'तो! खाक हम गुरु को खोजते हैं! बारह बजने के बाद मुझे भी डर लगने लगता था कि हमणां अवाज आवशे! और ये आवाज़ अच्छी लगती थी इसीलिए मैं कभी-कभी जानबूझकर देर करता था कि कोई हमें खोजे! कोई हमें पकड़े! और तभी भी मुझे कभी नहीं डांटा। डांटा तो त्रिकमबापू को डांटा, छगनबापू को डांटा। मुझे कभी नहीं डांटा।

'रामचरित मानस' स्वयं सद्गुरु है। और आज ऐसे बुद्धपुरुष स्वयं सद्गुरु 'रामचरित मानस' उसकी जन्म जयंती है और ठाकुर की भी जन्मजयंती है तब आईए, वो प्रसंग आपको गाकर सुना दूं। और आज का ये महिमावंत पर्व कथा क्रम लेकर आगे बढ़ूं। भगवान शिव बिराजमान है कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे। और भवानी अवसर देखकर आई है। प्रश्न पूछती है, महाराज! आप आज बहुत प्रसन्न है। मेरे मन में कुछ जिज्ञासा है। रामकथा कहकर मेरी जिज्ञासा को आप पूरी करे। और जब पार्वती ने रामकथा सुनाने की प्रार्थना की तब भगवान शंकर बहुत राजी हुए और मन ही मन अपने ईष्टदेव का सिमरन करने लगे। शिव से जिज्ञासा हुई। दशरथ आंगन में विहार करनेवाले भगवान राम का स्मरण किया। अपने बाल राम को प्रणाम करते हुए भगवान शिव हर्षित होकर पर्वत के शिखर से बोले, पार्वती, धन्य हो, धन्य हो! आपके समान दुनिया में कोई उपकारी नहीं है। आपने ऐसी कथा पूछी है जो त्रिभुवन को पावन करती है। आप परोपकारिणी है। मैं बार-बार बोला हूं कि परमात्मा की कथा में जो निमत्त बन जाता है वो उपकारी है। अवश्य, ये बहुत बड़ी परोपकारिणी घटना है। भोलेबाबा ने प्रसन्नता व्यक्त की। कहा, सुनो देवी, राम कौन है?

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

ऐसी जिसकी अलौकिक करणी है। वेद 'नेति नेति' कहकर रुक जाते हैं, वो परमतत्त्व कभी नरलीला करने के लिए दशरथ के घर पुत्र बनकर आये थे। यद्यपि देवी, परमतत्त्व के अवतरण का कोई कारण नहीं होता। वो अकारण कृपा करते हैं। फिर भी 'रामचरित मानस' में तुलसी ने कुछ कारणों की चर्चा की है कि भगवान राम का प्रागट्य धरती पर क्यों हुआ। 'भगवद्गीता' ने जो लिखा है उसको ही करीब-करीब स्वीकारे हुए तुलसी ने भी चौपाईओं में डाला है। धर्म का कभी नाश नहीं होता। कभी-कभी ग्लानि होती है। धर्म को स्वयं को अथवा तो किसी कारणवश धर्म को थोड़ी-बहुत हानि होती है। नाश धर्म का हो ही नहीं सकता। धर्म शाश्वत है। आसुरी वृत्ति बहुत फलें-फूलें ऐसे समय में संत-सज्जनों की पीड़ा हरने के लिए परमात्मा धरती पर प्रगट होते हैं।

राम का प्रागट्य क्यों हुआ उसका पहला कारण बताया शिव ने जय-विजय वैकुंठ के द्वार पर भगवान के द्वारपाल थे। सनतकुमार दर्शन को गये और थोड़ा संघर्ष हो गया। इसमें महात्माओं ने शाप दे दिया। दूसरा कारण महासती वृंदा, जिसने भगवान विष्णु को शाप दिया कि आपने मेरे से छल किया, आपके साथ रावण छल करेगा और आपकी पत्नी को अपहृत करेगा और आपको इस कार्य का परिणाम राम अवतार में दुनिया को दिखाना होगा। तीसरा कारण नारद ने शाप दिया वो बताया। चौथा कारण मनु-शतरूपा की कठिन तपस्या का आया। पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु को ब्राह्मणों ने शाप दिया और प्रतापभानु फिर रावण होता है। अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ। धर्मरुचि नामक उसका प्रधानमंत्री था वो दूसरी माता के उदर से विभीषण बनता है। 'मानस' में भगवान राम का प्रागट्य होता है इससे पूर्व रावण के जन्म की कथा आई है। पहले असुरों की कथा; अंधेरे की कथा पहले आई, फिर उजाले की कथा आई। रावण-कुंभकर्ण और विभीषण ने कड़ी तपस्या की और दुर्गम वरदान प्राप्त किए। लेकिन उसका दुरुपयोग किया। पूरे जगत को त्रास दिया। पूरी वसती अकुला उठी। गाय का रूप लेकर ऋषि-मुनिओं के पास जाकर रोई। देवताओं के पास जाकर अपनी पीड़ा गाने लगी। आखिर में ब्रह्माजी के पास गई। पितामह ब्रह्मा धरती को ढाढ़स देते हैं। पूरा समाज ब्रह्मा के सामने खड़ा हैं। अब एक ही उपाय है धरती, हम सबको जिसने बनाया है वो परमात्मा राम जो है, ईश्वर जो है उसको हम पुकारे। और वो परमात्मा हमें कोई उपाय बताये। और ब्रह्मा की अगवानी में पूरा संसार परमात्मा को प्रार्थना करता हैं। आईये, इन देवस्तुति में हम सब भी आज संमिलित हो जाये ताकि हमारे हृदय की अयोध्या में भी विश्रामरूपी राम का प्रागट्य हो जाये। कुछ बंध गायें-

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता।।

मेरी घड़ी के मुताबिक बारह बजे हैं। सभी को भुवनेश्वर की भूमि पर से पूरे विश्व को रामजनम की बधाई हो। और अब मैं प्रसंग में भी जल्दी आकर बधाई की ओर लिए चलूं। ये तो बारह बज गये इसीलिए बीच में मैंने आपको मेरी प्रसन्नता व्यक्त की। देवताओं ने स्तुति की। आकाशवाणी हुई।

त्रेतायुग। महाराज दशरथजी सूर्यवंश,रघुवंश के राजा। वेदविदित उसका जीवन। कौशल्यादि प्रिय रानी। हर प्रकार से महाराज दशरथ का जीवन धन्य था। लेकिन एक बार महाराज दशरथजी को ग्लानि हुई कि मुझे पुत्र नहीं है। दुनिया में किसी को समस्या हो तो मेरे पास आकर कहे कि महाराज, मेरी ये समस्या है। लेकिन स्वयं

मेरे श्रोताओं को, मेरी व्यासपीठ के प्रति श्रद्धा रखनेवालों को एक बात कहनी है कि अपने गुरु के, अपने सद्गुरु के, अपने बुद्धपुरुष के प्रभाव मत देखो, उनके स्वभाव को जानो। हम चुक जाते हैं; गुरुप्रभाव में आ जाते हैं! बहुत सुंदर बोल लेते हैं कोई, पकड़ लेते हैं! बांध देते हैं शब्द प्रभाव में, वाक्छटा में! प्रभाव की महिमा जरूर है! लेकिन स्वभाव जानो। हम जैसों के लिए गुरु ही परमात्मा है, जिसका हम स्वभाव जाने। गुरु तो नहीं स्वभाव बताएगा लेकिन हमें जानना होगा। और इसीलिए हमें बहुत अंतरंग यात्रा करनी होती है।

दशरथजी को ये समस्या है तो किससे कहे? और तब तुलसीदासजी जगत को एक विश्व मारग बताते हैं कि जब कहीं से भी हमारी समस्या का समाधान प्राप्त न हो तब अपने गुरु के द्वार जाईयो। आज राजद्वार, राजा स्वयं गुरु के द्वार जा रहे हैं। महाराज दशरथजी गुरुगृह गए और अपने दु:ख-सुख सब गुरु के सामने पेश किये। वशिष्ठजी राजा को कहते हैं, राजन्, मैं तो कब से प्रतीक्षारत हूं कि मेरा यजमान मेरे पास आकर 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' करे तो ब्रह्म को मैं उनके आंगन में खेलता कर दूं। अब धैर्य धारण करो। एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। और पुत्रकामेष्ठि यज्ञ करवाना होगा।

भगवान वशिष्ठ ने शृंगीऋषि को बुलाया है। और शृंगीऋषि ने दशरथ के वहां पुत्रकामेष्ठि यज्ञ किया। तीनों रानियों ने प्रसाद प्राप्त किया और सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। जब से हरि परमात्मा स्वयं माँ के गर्भ में आए हैं, पूरे संसार में सुख-समृद्धि छाने लगी। कुछ काल बीता। परमात्मा को प्रगट होने का अवसर निकट आया। जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि, पंचांग अनुकूल हो गया। चर-अचर हर्षयुक्त है क्योंकि भगवान राम का जन्म सुख का मूल है। त्रेतायुग है। चैत्र मास है। शुक्ल पक्ष है। नौमि तिथि है। मध्याह्न का समय है। अभिजित सोह रहा है। पाताल के नागदेवता, पृथ्वी के ब्राह्मण देवता और स्वर्ग के देवता भगवान की गर्भस्तुति कर रहे हैं। और बिलकुल मध्याह्न का समय हुआ। अखिल लोक निवास परमात्मा, जो जगनिवास है। पूरा जगत जिसमें वास करता है अथवा तो जो समग्र जगत में निवास करता है ऐसे परमात्मा का बिलकुल मध्याह्न के समय पर प्रागट्य होता है।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

कृपालु परमात्मा प्रगट हुए। अद्‌भुत रूप है परमात्मा का! माँ कौशल्या ने प्रभु के रूप का दर्शन किया। अब संतों से मैंने सुना जो हर वक्त कहता हूं कि माँ मुख फेर लेती है। भगवान साक्षात् प्रगट हुए हैं। माँने मुंह फेर लिया! परमात्मा पूछ रहे हैं, माँ, मैं आया और तू मुंह फेर रही है? बोले, आप आये, आपका परम स्वागत है। लेकिन मैं मुंह इसीलिए फेर रही हूं कि एक तो आपने कहा था कि मैं नररूप में आऊंगा। आज आप नररूप नहीं आये हैं, चतुर्भुज बनकर चतुर्भुज नारायण बनकर पधारे हैं। दूसरी बात, आपने कहा था कि मैं पुत्र बनकर आऊंगा। आप तो स्वयं बाप बनकर आये हैं! आप मनुष्य नहीं लगते हैं। कौशल्या ने कहा, चार हाथ मनुष्य के नहीं होते, दो हाथ होते हैं। आप दो हाथ कर दो। भगवान ने दो हाथ बना दिए। बिलकुल नररूप में प्रभु दिखाई दिए। माँ के सामने बोले कि अब हो गया बालक? माँने कहा कि लगते तो हो बालक लेकिन बोलते हो बड़ों की तरह! बच्चा तो रोता है। सूरभूप परमात्मा बालक का रूप लेकर माँ कौशल्या के अंक में रोने लगे। अब राम का जनम हुआ। राम का प्रागट्य हुआ और तुलसी की उद्‌घोषणा-

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

बिप्र, धेनु, सुर, संत हित; ब्राह्मणों के लिए यानी धर्म के लिए, धेनु के लिए मानी अर्थ के लिए, देवताओं के लिए मानी काम के लिए और संत के लिए मानी मोक्ष के लिए परमात्मा ने मनुष्य अवतार धारण किया। फिर भी उसके पीछे कोई कारण नहीं, निज ईच्छा से उसने अपने शरीर को निर्मित किया। तत्त्वत: ये परमात्मा है। बालक बनकर भगवान कौशल्या की गोद में रोने लगे। और महाराज दशरथजी के कानों में ये बधाई आई कि पुत्र का जनम हुआ है। और पहली प्रतिक्रिया महाराज दशरथजी की एकदम ब्रह्मानंद में महाराज डूब गये! ब्रह्मानंद की अवस्था से बाहर आते दशरथजी सोचने लगे कि जिसका नाम सुनने से शुभ होता है ऐसा परमात्मा मेरे घर बालक बनकर आया है? कौन मानेगा? अब तो गुरु ही निर्णय करेगा कि ये साक्षात् ब्रह्म है कि हमारी कोई भ्रांति है? इसीलिए भगवान वशिष्ठजी को जल्दी बुलाया गया। ब्राह्मणों के संग में भगवान वशिष्ठजी दशरथजी के द्वार आते हैं। गुरु के द्वारा स्पष्टता हुई कि ये साक्षात् ब्रह्म आपके यहां प्रगट हुआ है। और पूरी अयोध्या में रामजनम की बधाईओं का आरंभ होता है। फिर एक बार भगवान भुवनेश्वर की भूमि पर से चैत्र नवरात्र में पवित्र रामनवमी और 'मानस जयंती' के दिन आप सभी को और सारे विश्व को रामजनम की बधाई हो, बधाई हो।

सुख और दु:ख दोनों सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है

'मानस-भुवनेश्वर', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। एक-दो बड़े प्यारे प्रश्न है उडीसी युवानों के। मैं बीच में उसको लूं इससे पूर्व एक बार हमनें बीच में चर्चा की कि हमारे यहां एक शब्द प्रचलित है 'पिंड़ब्रह्मांड।' मैं चर्चा में नहीं जाऊंगा लेकिन केवल आप को संकेत करके आगे बढ़ूं। ये हमारा जो शरीर है उसमें जो कटिभाग है, कमर; कमर से नीचे के जो अंग है उसको पाताल कहते हैं और उसकी गिनती शास्त्रों में सप्त है। हमारे शरीर के चौदह ब्रह्मांड है, चौदह लोक है उसमें कमर के उपर शिखा तक सात लोक माने गये हैं। कुल मिलाकर चौदह भुवन है। और 'मानस'कार कहते हैं-

चौदह भुवन एक पति होई।
भूत द्रोह तिष्टइ नहिं सोई।।

कटि है केन्द्र, जहां से सप्त उपर के लोक, सप्त नीचे के लोक की एक सूक्ष्म रेखा बताई गई है। और कटि को भारतीय मनीषिओं ने बहुत महत्त्व का माना है। जिन लोगों ने शृंगार का वर्णन किया है उसने भी कटिभाग को महत्त्व दिया है। और आध्यात्मिक जगत में जीवन की साधना के लिए भी कटिभाग संयम का प्रतीक बताया गया है। ये रस का भी प्रतीक है। इस संयम की लक्ष्मणरेखा से नीचे सप्त पाताल नीचे, उपर सप्त आकाश। उसमें विशेष हम चर्चा न करें; समय भी नहीं है, विषय भी गहन है।

सात आकाश जो उपर है उसमें पृथ्वी को केन्द्र माना गया है। पृथ्वी से नीचे ये सात पाताल है। और मुझे ये अच्छा लगता है कि पृथ्वी केन्द्र है इसीलिए ईश्वर पृथ्वी पर अवतार लेता है। आकाशवाला ईश्वर हमारे लिए इतना प्रेक्टिकल नहीं है। हाथ उपर उठाते-उठाते थक गये! न छूआ गया, न देखा गया, न महसूस किया गया! पाताल बड़ी गहराई का संकेत करता है। वहां हमारी पहुंच नहीं। गहनतम परम को हम प्राप्त कर नहीं पाते अथवा तो समझ नहीं पाते। इसीलिए हरि पृथ्वी पर आते हैं। 'मानस' का जो परमात्मा का अवतार है वो तो पृथ्वी के द्वारा ही तो हुआ है।

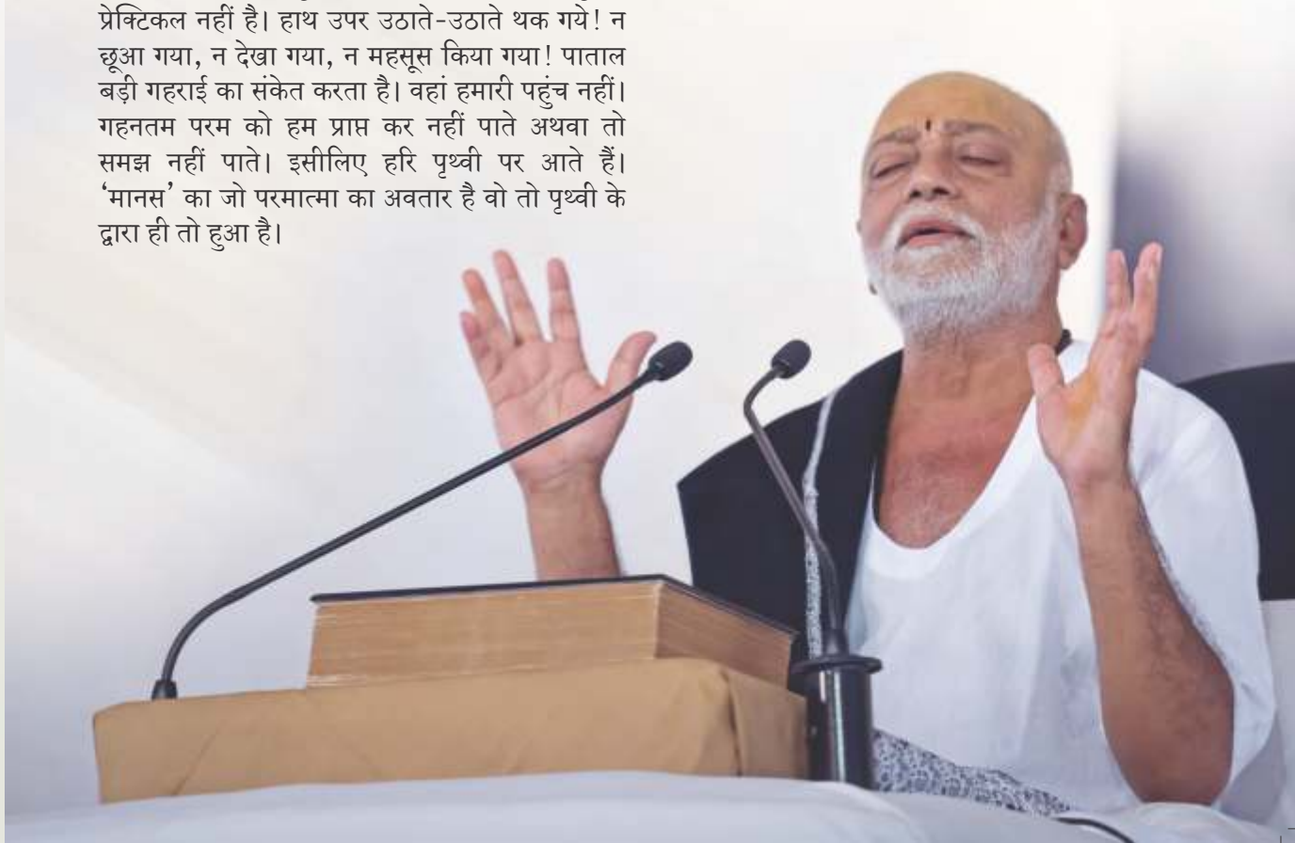

सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ।

और परमात्मा धरती पर अवतार लेता है। तो ये हमें सरल पड़ेगा कि जहां हम है वहां परमात्मा आये हैं। हमारी गोद तक आये। हमारे साथ खेले; हम उसके साथ खेलें; हम उसके साथ बोलें।

तो पिंड़ में जैसे कटि केन्द्र है; सप्त आकाश, सप्त पाताल जो भुवन है उसमें पृथ्वी केन्द्र है। पृथ्वी हमने देखी है, पृथ्वी उपर हम श्वास ले रहे हैं। हम पानी, वायु, जल सब कुछ पाते हैं। पृथ्वी में फ़िर मिल जाते हैं। तो पृथ्वी है केन्द्र। उसके उपर आकाश सात भुवन, इसमें एक भुवन का नाम है 'पटाकाश।' वेदांत की परिभाषा में पट मानी कपड़ा। प्रत्येक व्यक्ति की चमड़ी तो बिलकुल अंगों को ढ़ंककर बिलकुल सटी हुई है। वस्त्र सटा हुआ नहीं है। कोई धोती पहने; कोई कूर्ता पहने; माताएं साड़ी पहने; जो-जो परिवेश हो। भारतीओं का परिवेश वैज्ञानिक रहा है। खैर, आज का जो माहौल है उसकी हम आलोचना में न जाये! लेकिन पहेरवेश का अपना एक विज्ञान है। पहेरवेश के रंग का अपना एक विज्ञान है। हमारे यहां वहां तक चिंतन किया गया है कि किस वार को किस रंग के कपड़ें पहनने चाहिए। और उसके पीछे कुछ न कुछ विज्ञान लगता है। ये संन्यासी लोग क्यों भगवें कपड़ें पहनते हैं? जैन लोग सफ़ेद कपड़ें पहनते हैं। कोई हरे रंग का पहनता है, कोई कुछ पहनता है। रंग का भी विज्ञान है।

मेरे पास एक-दो प्रश्न है। एक, 'बापू, हम यज्ञ करते हैं तो चावल, जव और तिल ये तीनों की आहुति क्यों देते हैं? उसके पीछे कोई विज्ञान है?' ऐसा एक युवक का प्रश्न है। नाम लिखा नीरज महापात्र। तीन रंग का विज्ञान है। चावल, जव और तिल। और तिल बहुधा काले रंग के रखे जाते हैं। ये तीनों का रंग पृथक् है। चावल श्वेत है। जव पीले रंग का है। और तिल काले रंग का है। यज्ञ क्या है? सामूहिक स्वाहा करके सामूहिक, सार्वजनिक वितरण पद्धति का नाम भारतीय यज्ञ का केन्द्रीय विचार है। चावल सफ़ेद रंग का है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसके रंग का विज्ञान है सत्त्वगुण। जव पीले रंग का है। इस रंग का आध्यात्मिक अर्थ है रजोगुण। और काले तिल ये तमोगुण का प्रतीक है। मानो भारतीय मनीषा ये तीनों गुणों को आहुत करने की बात करती है। ध्यान देना, जरा इस विज्ञान को समझें। लोग कहते भी हैं कि अग्नि में ये धान्य डालने की क्या जरूरत है? किसीके झोंपड़े में रोटी बना के दे दो। पहले-पहले तर्क ठीक भी लगता है। लेकिन विज्ञान को नकारा न जाय। ये तीनों अन्न अग्नि में ड़ालने से भस्म हो जाते हैं, राख हो जाते हैं। और ये यज्ञ की भस्म कई के भाल पर शोभा देने लगती है। और जब वो ही भस्म कोई परम बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति के भाल में चली जाती है तब उसका शास्त्रीय नाम विभूति हो जाता है। और विभूति का अर्थ है ऐश्वर्य। और फ़िर यज्ञ से बरसा होती है। बरसा से अन्न प्राप्त होता है। अन्न से मन बनता है। ये सब वैज्ञानिक प्रक्रिया तो हमारे यहां है ही। ये तीन रंग संकेत करते हैं। प्रत्येक रंग हमारे भीतरी सेल को सचेत करते हैं अथवा सुषुप्त भी कर देते हैं; दबा देते हैं; संवेदनाहीन कर देते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, हमारें वस्त्र, वस्त्र का रंग हमारी वृत्तिओं को प्रभावित करता है। वस्त्र पहनने के बाद अपने शरीर और वस्त्र के बीच में जो जगह है उसको शास्त्र 'पटाकाश' कहते हैं। वस्त्र के अंदर रहा आकाश। फ़िर हमारे पुराने ज़माने में एक स्थान रहता था वहां पानी की मटकी रहती थी। उसमें हम पानी रखते थे। उस घड़े में पानी भरा हो तो बात ओर है लेकिन पानी कम हो अथवा तो घड़ा खाली हो, घड़े के अंदर जो एक आकाश है, रिक्तता जो है उसको वेदांत 'घटाकाश' कहते हैं। एक 'पटाकाश', दूसरा 'घटाकाश।' लेकिन ये घड़ा ये पात्र हम घर में रखते हैं। फ़िर घर भी तो अंदर से अवकाश से युक्त है। अलमारी है, टी.वी. है, फ्रीज़ है, लेकिन खालीपन तो है ही। उसको कहते हैं 'महाकाश।' चौथा है 'घनाकाश।' ये थोड़ा ऊंचा होता है। हां, हम स्वयं इतने ऊंचे रहते हो तो वो घन हमारे घर में भी आ जाता है। घन मानी बादल। उसका शास्त्रीय नाम है 'घनाकाश।' घन का एक अर्थ स्थूल भी होता है। घन मानी कठोर। पांचवें आकाश का नाम है 'नीलाकाश।' बीच में एक मिनट, इसी युवक का दूसरा प्रश्न, 'बापू, मैं मेड़िकल का छात्र हूं और बीच-बीच में कथा सुन लेता हूं। आप के आदेशमुक्त सूचन से मैं थोड़ा 'मानस' का पाठ भी करता हूं। मेरे मन में एक पंक्ति समझ में नहीं आ रही है। 'किष्किन्धाकांड' में वर्षा ऋतु में वर्णित की गई है-

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं ।
कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ।।

स्वागत करता हूं बेटा कि तू पाठ भी करता है और ऐसा प्रश्न भी करता है। ये घनाकाश की चर्चा आई तो उसका प्रश्न मैं ले लूं साथ-साथ। ये (रामकथा) केनाल नहीं है, ये उमड़ती-घूमती गंग है। उसके लिए कोई मेप नहीं हो सकता कि उसी में ही चले। वर्षाऋतु का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने लिखा है, वर्षाऋतु जब आती है तब चक्रवाक नाम के पक्षी दिखते बंद हो जाते हैं। वर्षा के कारण वर्षा से बचने के लिए अपने को सुरक्षित रखने के लिए ये चक्रवाक नामक पक्षी कोई ऐसी जगह में बैठ जाते हैं जो दिखते बंद हो गये हैं। 'देखिअत' का अर्थ है नहीं दिखाई देना। चक्रवाक का दूसरा अर्थ है चकवा। चक्रवाक है, दिखता नहीं है। क्यों? वर्षा के कारण। मैं आप से एक प्रश्न पूछुं कि वर्षाऋतु लाई जाती है कि अपने आप आती है? मूलत: तो वर्षा आती है ऋतुचक्र के अनुसार। उसको लाई नहीं जाती। विज्ञान कोशिश करते हैं लेकिन वो सार्वभौम हम नहीं कर सकते। ऋतुचक्र के अनुसार वर्षा आती है, लाई नहीं जाती। और जैसे ही वर्षा आती है, चक्रवाक दिखना बंद हो जाते हैं। वैसे ही कलियुग लाया नहीं जाता, आता है। और जैसा कलियुग आता है, हमारे अंदर से धरम दिखना बंद हो जाता है। तुलसी को ऋतुवर्णन भी करना है और ऋतवर्णन भी कहना है। हम को पता ही न रहे ऐसे कलियुग आता है! और प्रमाण ये कि जब हमारा धर्म चला जाय, नष्ट होने लगे तब समझना कि अरर्र! पता ही नहीं लगा और कलियुग प्रवेश कर गया? तब सावधान हो जाना। 'रामायण' अद्‌भुत शास्त्र है। युवक, तूने ठीक पंक्ति पकड़ी कि मुझे बोलने का मौका दिया। थेन्क यू। मुझे फ़िर स्मरण आने लगता है-

संप्रस्थिति मानस वास लुब्धा ।
सप्रियात्वा संप्रति चक्रवाका: ।।

'वाल्मीकि रामायण' में कहा गया है। वाल्मीकि वैज्ञानिक है। चक्रवाक पक्षी को वाल्मीकि ने मानसरोवर में रहने के लोभी बताये हैं। 'मानस वास लुब्धा।' लेकिन आज सपत्नी निकल पड़े है। वर्षा आ गई। मानसरोवर छोड़ा! राम आज सपत्नी नहीं है। राम के लिए ये वर्णन आया है। कहां-कहां से मानसिकता को बटोर रहे हैं वाल्मीकि!

तो कलियुग आता है। वर्षा आती है। आते ही चक्रवाक छिप जाते हैं। हमारे जीवन में कलियुग आ जाता है तब धरम नहीं रहता। कलियुग आया कि सत्य की मात्रा कम होने लगेगी! 'झूठ बोलना पड़ेगा! धंधा है! नहीं करेंगे तो टेन्डर पास नहीं होगा! उपर से या नीचे से, कैसे भी देना पड़ेगा!' ऐसा लगे तब समझना, कलि आया! और कलि आते ही धर्म गया। तिलक तो रहेगा, धर्म चला जाएगा। काली बिंदी रहेगी, धर्म चला जाएगा। हाथ में तुलसी की माला रह जाएगी, धर्म चला जाएगा। श्वेत वस्त्र रह जाएगा, धर्म चला जाएगा। पाप बहुत सूक्ष्म द्वार से प्रवेश कर सकता है। बहुत सूक्ष्मतम द्वार खोज लेता है पाप। जरा-सा छिद्र देखा, गया! तो कलि जब प्रवेश कर जाये हमें पता नहीं। हमें तब उसका प्रमाण समझ लेना चाहिए और सावधान होना चाहिए कि सत्य की मात्रा क्यों घटने लगी? कहीं कलि ने प्रवेश तो नहीं कर दिया? मेरा प्रेम नफ़रत में क्यों बदलने लगा? मैं स्वार्थी क्यों हो गया? कहीं कलि ने प्रवेश तो नहीं कर लिया?

जरा देख यही फ़र्क मेरी फ़िक्र और तेरी सोच में।
मेरे दिल में दर्दे जहान है तुझे सिर्फ़ अपना खयाल है।
- मासूम गाज़ियाबादी

शायर कहता है कि साधक, जरा देख, इतना ही फ़र्क है मेरी फ़िक्र में और तेरी सोच में। मेरे दिल में पूरी दुनिया की पीड़ा है और तुझे अपनी ही पड़ी है! युवक का ये प्रश्न मुझे बहुत प्यारा लगा।

तो एक है पटाकाश। एक है घटकाश। एक है महाकाश। चौथा है घनाकाश। पांचवां आकाश है नीलाकाश, नीलांबर। अंबर का अर्थ है आकाश। अंबर का अर्थ वस्त्र भी होता है। अंबर का अर्थ दिशा भी होता है। तो पटाकाश, घटाकाश, महाकाश, घनाकाश, नीलाकाश। शून्यावकाश; बिलकुल एम्पटी। पूर्णत: रिक्त। पूर्णत: रिक्त हुए बिना असंगता नहीं आती है। इसीलिए आकाश को हमने असंग कहा है। और अब बिलकुल आध्यात्मिक आकाश जिसका नाम है 'चिदाकाश।' हमारे चित्त का आकाश। 'रुद्राष्टक' में यही आकाश की चर्चा मेरे साधु विप्र ने की है-

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं ।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।।
करालं महाकाल कालं कृपालं ।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ।।

निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।

तो एक है चिदाकाश। कृष्णमूर्ति यद्यपि कोई धर्म की चर्चा नहीं करते थे। आत्मा-परमात्मा की बात भी उसमें कम मिलती है। लेकिन चिदाकाश की चर्चा जब अपने एक चेप्टर में वो कर रहे हैं जो मुझे रुचिकर है, प्रिय है। आपने कहा था कि मैं गुरु परंपरावादी नहीं हूं। फ़िर भी कोई व्यक्ति यदि कोई ऐसे समर्थ जिसने पाया है उनका हो जाये और जिसने पाया है उसकी कृपा से उसका चिदाकाश खुल जाये तो उसको प्रत्येक आकाश का ज्ञान बिना प्रयास उपलब्ध हो जाता है। हमारे यहां धरती पर बैठे-बैठे कई महापुरुष आकाश के एक ग्रह से दूसरे ग्रह के अंतर की गिनती दे चुके हैं। तुलसी ने एक तो लिख दिया और आज उस पर शोध भी चल रही है कि-

जुग सहस्र जोजन पर भानू ।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू ।।

उसकी गिनती चल रही है। विज्ञान के लिए बहुत सामग्री ऋषिमुनिओं ने दी है। ओर खोले, ओर खोले, ओर खोले। इसीलिए मैं कहता हूं कि मेरी कथा ये धर्मशाला नहीं है, प्रयोगशाला है। उसमें प्रयोग हो। और हो रहे हैं। सब अपने-अपने ढ़ंग से उसका अर्थघटन करते हैं। ऐसे छात्र, ऐसे युवक लोग जिसकी कथा में रुचि बनने लगे और ये ऐसी बातों के लिए जिज्ञासा करे ये मेरी दृष्टि में प्रयोगशाला की एक शुरूआत है।

आप राजी होंगे ऐसा एक दूसरा प्रश्न है युवक का। 'बापू, आप की कथा घर में टी.वी. में और कथास्थल पर सुनने से दोनों जगह आनंद तो आता है लेकिन कथा पंड़ाल में इतनी गरमी के बाद भी ज्यादा आनंद आता है।' टी.वी. का आनंद कम है इसीलिए कहूं कि कोई बंद भी कर दे! मुझे तो कोई बंद करनेवाला है ही नहीं! मैं चाहूं तो बोलना बंद करूं! तो ये तो विशेष लाईव वस्तु है ना? लेकिन उसका जो प्रश्न है वो ये है कि 'कल आप ने कहा; मैंने पहली बार सुना कि 'रामचरित मानस' का भी जन्मदिन है और राम का भी जन्मदिन है तो 'मानस-जयंती' और 'राम-जयंती' दोनों कल थी। बापू, राम और 'मानस' दोनों एक दिन प्रगटे हैं तो फ़िर दोनों में साम्य क्या-क्या है? वैषम्य क्या-क्या है?' ऐसे सवालों का मैं स्वागत करता हूं। बहुत साम्य है यारो! राम चैत्र शुक्ल नवमी को जन्मे, 'मानस' भी चैत्र शुक्ल नवमी को जन्मा। राम दोपहर को बारह बजे मध्याह्न के सूर्य को जन्मे। 'मानस' का भी अयोध्या में प्रकाशन हुआ वो उसी जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि में हुआ है। तुलसी का मत है संवत् सोलह सौ इकतीस साल में वो ही योग बना था जो त्रेतायुग के राम के जनम में योग बना था। तो ये भी साम्य है। राम का जन्म का स्थान अयोध्या में, 'मानस'जन्म का स्थान भी अयोध्या है। राम हृदयप्रधान ईश्वर है कि नहीं? राम हृदयप्रधान है तो 'मानस' का अर्थ होता है हृदय। तुलसी का 'रामचरित मानस' भी हृदयप्रधान है। केन्द्र में प्रेम है ये भी एक साम्य है। 'मानस'सरोवर कह दो तो उसमें जल है, राम में करुणा का जल है।

कारुण्यरूपं करुणाकरंतं श्री रामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ।

राम के साथ छाया के रूप में कौन चल रहा है? सीताजी चल रही है कि नहीं? और सीता को शंकराचार्य ने शांति कहा है। राम के साथ शांति चल रही है। मेरा अनुभव है 'मानस' के साथ भी अंत:करण की शांति चल रही है। शांति न होती तो कोई कथा सुनता नहीं। और राम के साथ लक्ष्मणजी चलते हैं, 'मानस' के साथ जागृति चलती है। जागरण चल रहा है। 'मानस' के साथ लक्ष्मण रेखाएं चल रही है। जो बाध्य नहीं करती है, सावधान करती है। जैसे लक्ष्मण ने कहा, माँ, तू तो स्वतंत्र है, तू रेखा नांघ सकती है। लेकिन कोई अंदर नहीं आ सकेगा। तुम चाहो तो जा सकती हो। ऐसी सावधानी 'मानस' के साथ लक्ष्मण बनकर चलती है जो हमें लक्ष्मण रेखा दिखाते हुए सावधान रखते हैं कि सलामती इसमें है। आप चाहो तो उल्लंघन कर लेंगे। बाध्यता नहीं है। आप को परतंत्र नहीं करेंगे। तो जहां राम है वहां हनुमान होगा ही। और जहां 'मानस' है वहां हनुमानजी होगा, होगा, होगा! क्योंकि इनके बिना तो कथा ही नहीं चलती। इसीलिए आप और पूरी दुनिया जानते हैं, हम कथा शुरू करते हैं तो पहले उनको बुलाते हैं, 'आईये हनुमंत बिराजिए।' और मैं तो पक्की श्रद्धा पर हूं कि ऐसे आयोजन किसी परम की उपस्थिति में ही हो सकता है! बाकी नव-नव दिन के ये विराट यज्ञ! राम अयन करते हैं। अयन का एक अर्थ है गति। 'रामायन', 'रामचरित मानस' वो भी गति करता है। भगवान राम एक प्रवाह का नाम है। कभी मैंने कहा है, निरंतर गतिशीलता का नाम है राम; निरंतर विकसित होने का नाम है राम। एक ऐसा प्रवाह है राम। 'मानस' भी एक ऐसा प्रवाह है-

सकल लोक जग पावनी गंगा।

ये गंगा की तरह बहती रहती है। राम महामंत्र है, तो 'मानस' भी महामंत्र है।

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के।।

और 'रामायण' महाकाव्य है। 'वाल्मीकि रामायण' को तो हमने महाकाव्य कहा ही है। 'मानस' भी महाकाव्य है। तो राम भी महाकाव्य है। 'राम तुम्हारा चरित्र स्वयं एक काव्य है। कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।'- मैथिलिशरण गुप्त। राम का वर्ण काला है, श्याम है। 'मानस' भी श्याम स्याही से लिखा गया शास्त्र है। श्यामता गहराई का प्रतीक है। स्वच्छ पानी उजला रहता है। गहरा पानी सांवरा होता है। हमारी सभ्यता में सुंदरता के रंग भी समय-समय पर बदले हैं। एक समय था, जहां सांवरा रंग ही प्रतिष्ठित था। इसीलिए-

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।

परमात्मा के रूप को हमनें सांवरा माना है। और तुलसीदासजी 'रामचरित मानस' को काले रंग की उपमा देते हैं-

स्याम सुरभि पय बिषद गति।

'मानस' सांवरा है, श्याम स्याही से लिखा है। लेकिन उसका दूध, उसका सार बहुत उज्वल है जो हमारे चित्त को उज्वल और धवल कर देता है। तो सांवरे का भी संगम है। राम उत्तम श्लोकके प्रतिनिधि है। कृष्ण के लिए शुकदेव का शब्द है, 'उत्तम श्लोक लीलया।' 'भागवत' में राम और कृष्ण एक है तो उत्तम श्लोक है। तो राम श्लोक के प्रतिनिधि है लेकिन 'मानस' लोक का प्रतिनिधित्व कर रहा है। और 'सकल लोक जग पावनी गंगा' है। और थोड़ा वैषम्य। राम अवतार लीला समाप्त करते हैं। मेरा 'मानस' अवतारलीला समाप्त नहीं करेगा। ये तो अनंत युग तक चलता रहेगा। ये जल समाधि नहीं लेगा। और 'मानस' सबको साथ-साथ लेकर यात्रा करता रहेगा। निरंतर यात्रा करता रहेगा। न कोई मंज़िल। अरे, मंज़िल आ जाए तो मजा चला जाय यार! खुमार बाराबंकवीसाहब का एक शे'र है-

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।

मार्गी बने रहो। छोड़ो मंज़िल! 'चरैवेति चरैवेति।' और भगवान राम केवल त्रेता में आते हैं। और रामकथा तो सतजुग में भी थी; त्रेता में तो थी ही; द्वापर में भी थी। और कलियुग में तो इसके सिवा कोई उपाय नहीं है। तो ये भी साम्य है। राम जहां प्रगट हुए वहां सरजू बहती है। तुलसी के 'मानस' में कविता बहती है। सुंदर कविता का प्रवाह निरंतर बहता रहता है। राम भगवान का ब्याह हुआ तो लोकरीति हुई, वेदरीति हुई। राम श्लोकवाले भी है और लोकवाले भी है। 'मानस' भी 'लोक बेद दुई मंजुल कुला।' लोक और वेद दोनों को छूता हुआ चल रहा है 'रामचरित मानस।' तुलसीदास ने कहा, राम को स्मरो, राम को गाओ, राम को सुनो। 'मानस' के लिए भी यही विद्या लागू होगी। 'मानस' को स्मरो, कोई चौपाई को याद रखो। 'मानस' को सुनो और 'मानस' को गाओ। राम की स्तुति वेद करते हैं। 'मानस' की

हम कहते हैं कि पापकर्म का फल दुःख, पुन्यकर्म का फल सुख। तो दो फल हमारी दृष्टि में है। लेकिन तत्त्वतः दो नहीं है। क्योंकि सुख और दुःख दोनों सापेक्ष है, ये निरपेक्ष नहीं है। झूले का एक नियम है कि वो जितना आगे जाएगा इतना ही पीछे जाएगा। उसकी नैसर्गिक गति समान है। सुख और दुःख सापेक्ष है लेकिन झूले में झुलाता है हमें। और तब साधक को ये समझना चाहिए कि सुख और दुःख की मात्रा भी करीब-करीब एक समान ही रहती है।

स्तुति भी वेद करता है। 'गावत बेद पुरान अष्टदस।' अरे, राम की स्तुति शंकर करते हैं-

जय राम रमारमनं समनं।
भवताप भयाकुल पाहि जनं।

'मानस' की स्तुति भी-

गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।

कितना साम्य है? राम के पास 'मानस' है। 'मानस' मानी हृदय। 'मानस' के पास राम है-

येही मह रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुरान श्रुति सारा।।

तो बाप! 'मानस-भुवनेश्वर', जिसकी कुछ चर्चा कर रहे हैं हम। इसमें सात भुवन, सात आकाश पृथ्वी को केन्द्र बनाकर उपर। सात पाताल नीचे इसमें तल, अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल, सतल। ये सात पाताल का जिक्र है। तो सात पाताल, सात आकाश ये है चौदह भुवन। और उनका पति एक मात्र या तो शिव है, या तो राम है, लक्ष्मण है, कोई भी है।

तात राम नहीं नर भूपाला।
भुवनेश्वर कालहु कर काला।।

तो कई अर्थों में चौदह भुवन की चर्चा हो सकती है अपने आंतरिक विकास और आंतरिक विश्राम के लिए। पिंड और ब्रह्मांड दोनों की एक साथ तुलना की जाती है। जो ब्रह्मांड में है वो पिंड में है, जो पिंड में है वो ब्रह्मांड में भी है; तब ये भी चर्चा की जा सकती है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और अंत:करण चतुष्टय द्वार वो भी चौदह भुवन है पिंड का। और सबका पति हरि होना चाहिए। हमारी कर्मेन्द्रियों का पति हरि के बदले 'हुं' हो जाता है; महेश्वर के बदले 'मैं' हो जाता है तब भुवन खंडहर होने की तैयारी हो जाती है! पूर्ण अद्वैत में तो केवल 'चिदानंदरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।' बचता है। ऐसा आदि जगद्गुरु ने गाया है। हम रस लें, स्वाद लें लेकिन उसका कोई मालिक भी हो कि हमारे स्वाद और हमारे रस को सम्यक् रखें। हमारी आंखें देखने योग्य देखें, उसका कोई कंट्रोल हो। हमारी जीभ बोलने योग्य बोले, उसका कोई पति हो।

आईए, कथा का संक्षिप्त दौर तुम्हारे सामने थोड़ा रख दूं। कल कथा के दौरान हम सबने मिलकरके भगवान राम के प्रागट्य और 'मानस' के प्रागट्य का उत्सव मनाया। कथा से आप परिचित है। माँ कौशल्या ने पुत्र को जन्म दिया वैसे ही सुमित्रा ने दो पुत्रों को, कैकेयी ने एक पुत्र को जन्म दिया। कौशल्या को अध्यात्म अर्थ में जगद्गुरु शंकराचार्य ने 'ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या' कहा है। और ज्ञान का फल अनेक नहीं होता, एक ही फल होता है। ज्ञान का अंतिम और एक मात्र फल है मोक्ष। और भगवान राम एक ही कौशल्या से प्रगट हुए उसका मतलब 'ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या' उसका एकमात्र फल है राम। राम मोक्ष है। राम परमार्थ रूप है। राम मुक्ति है। निर्वाणदायक है।

शंकराचार्य भगवान ने कैकेयी को कर्मशक्ति बताया है। कर्म का भी एक ही फल है। हम कहते हैं कि पापकर्म का फल दु:ख, पुन्यकर्म का फल सुख। तो दो फल हमारी दृष्टि में है। लेकिन तत्त्वत: दो नहीं है। क्योंकि सुख और दु:ख दोनों सापेक्ष है, ये निरपेक्ष नहीं है। खास करके वेदांत में। मैंने कई बार आपसे बात की है कि झूले का एक नियम है कि वो जितना आगे जाएगा इतना ही पीछे जाएगा। उसकी नैसर्गिक गति समान है। मेरी समझ में गुरुकृपा से ऐसा है कि सुख और दु:ख सापेक्ष है लेकिन झूले में झुलाता है हमें। और तब साधक को ये समझना चाहिए कि सुख और दु:ख की मात्रा भी करीब-करीब एक समान ही रहती है। लेकिन सुख का हमनें इतनी तीव्रता से स्वीकार कर लिया है इसीलिए ज्यादा लगता है और दु:ख का हमनें नकार किया है इसीलिए भेद दिखता है। तो कर्म का फल सुख और दु:ख तत्त्वत: एक है। इसीलिए भरत एक है।

सुमित्रा को उपासना कहा और दशरथ को वेद कह दिया शंकराचार्य ने। उपासना के दो फल है। जो आदमी सही में उपासना करता होगा उसके पास दो चीज आप देख पाओगे क्योंकि दो उनके फल है। एक, मौन। दूसरा, जागृति। जो उपासक है, वो बोल-बोल नहीं करेगा, मौन रहेगा। बोलने पर बोलेगा। अकारण वो नहीं बोलेगा। उपासक मौन रहेगा। उपासक का एक अर्थ होता है जिसने पा लिया है। उसके निकट बैठ जाना।

और बैठने के बाद यदि आपको फल चाहिए तुम्हारी उपासना का तो मौन रहो। बोल-बोल न करो। चौदह साल लक्ष्मणजी राम के साथ रहे। जागृत है; बहुत से प्रश्न पूछ सकते थे। लेकिन एक ही बार उसने पांच प्रश्न पूछे पंचवटी में। बाकी अक्सर मौन रहे। जहां बोलना था, बोले हैं। मेरी समझ में उपासना का परिणाम है चुप रहना। चुप रहना सीखें हम। सुमित्रा उपासना है। उसके दो परिणाम है। उसमें शत्रुघ्न जो है वो मौन है। और जो मौन होता है वो शत्रुघ्न होता है। आप कुछ बोले ही ना, कोई कोमेन्ट ही न करे तो आप पर विवाद होने का, विरोध होने का कोई सवाल ही नहीं। क्योंकि आप बोले ही नहीं। दूसरा फल है जागृति। अग्नि के पास यदि आपको बैठना है, उपासना करनी है तो आपको जागना पड़ेगा। जो उपासना करता है उसका फल जागृति और मौन है। कौशल्या ने एक पुत्र, कैकेयी ने एक पुत्र, सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। मानो चार फल के रूप में ये प्रगट हुए हैं।

दिन बीतते चले। चार भाईओं का नामकरण संस्कार करने का अवसर आया। राजा ने ज्ञानी गुरुदेव वशिष्ठजी और ब्रह्ममंडली को बुलाया। और गुरुजी दशरथ के चारों पुत्रो का नामकरण करते हैं। आराम दे वो राम। भर दे वो भरत। शत्रुता से मुक्त करे और मुक्त रहे वो शत्रुघ्न। और समस्त लक्षण का धाम और परम औदार्य वो लक्ष्मण। ऐसा चारों राजकुमारों का नामकरण हुआ। कुमार अवस्था हुई चारों राजकुमारों की। गुरुजी ने आकर यज्ञोपवित संस्कार किया। चारों राजकुमार यज्ञोपवित से द्विज बनकर, ब्रह्मकुमार बनकर वशिष्ठजी के आश्रम में विद्या प्राप्त करने के लिए गए। 'मानस'कार ने लिख दिया, अल्पकाल में विद्या प्राप्त कर ली प्रभु ने। क्योंकि जिसके श्वास-श्वास में वेद है उसको क्या पढ़ना? लेकिन दुनिया को दिखाया कि पढ़ना चाहिए। शिक्षा, दीक्षा, विद्या जरूरी है। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त करके गुरुगृह से चारों भाई फिर राजभवन में आए। गुरु से जो शिक्षा-दीक्षा पाई थी वो अपने जीवन में वर्तन में साकार करते हैं।

कथा के क्रम में विश्वामित्र नामक मुनि जो सिद्धाश्रम में रहकर यज्ञ, जप, तप, अनुष्ठान करते थे। मारीच-सुबाहु उसके अनुष्ठान में बार-बार बाधा डालते थे। विश्वामित्रजी अयोध्या आते हैं। दशरथ से पुत्रों की मांग करते हैं। महाराज दशरथ ममतावश इन्कार कर देते हैं। वशिष्ठजी के कहने पर वो राजी होते हैं और दोनों पुत्र विश्वामित्रजी को प्रदान करते हैं। माताओं के आशीर्वाद लेकर राम-लक्ष्मण विश्वामित्र का कार्य करने के लिए पदयात्रा करते हैं। रास्ते में ताडका मिली। ताडका को दिव्य गति प्रदान की प्रभु ने और विश्वामित्र के आश्रम में आए। सुबाहु यज्ञ में विघ्न करने आया। भगवान राम ने अग्नि के बाण से सुबाहु को गति दी। मारीच आया। बिना फने का बाण मारकर उसको लंका की ओर फेंक दिया। असुरों का निर्वाण हुआ।

कुछ दिन भगवान रुके। और उसके बाद विश्वामित्रजी के कहने पर धनुषयज्ञ के लिए जनकपुर गए। रास्ते में गौतमऋषि का आश्रम आया। अहल्याजी बिलकुल पत्थरदेह मानो चुपचाप बैठी है। समाज में उसका स्वीकार नहीं है। विश्वामित्र ने गौतमऋषि और अहल्या की कथा सुनाई और कहा, महाराज, आप चरणरज प्राप्त कराओ और आपकी रजमात्र कृपा से इस महिला का समाज में पुन: स्वीकार होगा। भगवान राम ने अहल्या को चरणरज की कृपा करके रजमात्र कृपा करके अहल्या के चैतन्य को प्रगट किया। मानो अहल्या को जीवन जीने के लिए होंसला दिया। राम का ये कार्य था। यहां से राम पतितपावन हो जाते हैं। मैं कई बार बोला हूं कि दुनिया में विचारक तो बहुत होते हैं लेकिन अधम का उद्धार होना चाहिए, सब का स्वीकार होना चाहिए। विचार के रूप में तो बहुत लोग पेश करते हैं। उद्धारक कोई-कोई होते हैं कि उद्धार भी करें। उद्धार करने के बाद भी स्वीकारक ओर कम होते हैं। उद्धार तो कर दो आप लेकिन स्वीकार कौन करेगा? राम ने स्वीकार किया अहल्या का और उसको पतिलोक भेज दिया यानी उसको पूरा सन्मान प्रदान किया। कृष्ण ने भी यही काम किया।

भगवान वहीं से गंगा के तट पर गए। गंगा की कथा सुनी। प्रभु जनकपुर पहुंचे। मिथिलेश जनक ने स्वागत किया। 'सुंदरसदन' नामक एक भवन में राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र और मुनिगणों के संग ठहराया। दोपहर का समय हुआ। भगवान राम ने भोजन किया। और उसके बाद भगवान ने विश्राम भी किया। मैं भी आपसे निवेदन करूं कि अब आप भी भोजन करे औ विश्राम कर सको तो फिर विश्राम भी करना।

मन का भय है दुराशा,
बुद्धि का भय है जड़ता,
चित्त का भय है विक्षिप्तता और
अहंकार का भय है मूढ़ता

मानस-भुवनेश्वर
: ९ :

'मानस-भुवनेश्वर', विशेष रूप में जिसकी आध्यात्मिक चर्चा इस कथा में हुई। उसके उपसंहारक सूत्रों की हम कुछ बातचीत करें इससे पूर्व थोड़ा कथा का क्रम आप सुन ले। कल के कथाप्रवाह में राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के संग जनकपुरी में पधारे हैं। 'सुंदरसदन' नामक एक महल में निवास किया। सायंकाल भगवान राम विश्वामित्रजी की आज्ञा लेकर लक्ष्मण को लेकर जनकपुरी दिखाने के लिए निकले हैं। चंद लम्हों में अनेक भुवनों का सृजन जिसकी माया करती है ऐसे परमात्मा आज जनकपुर की रचना लक्ष्मण को दिखा रहे हैं। संध्या का समय होते भगवान लौट आते हैं। पहली रात्रि पूरी होती है। दूसरे दिन सुबह गुरु की पूजा के लिए पुष्प चुनने के लिए दोनों भाई गुरु की आज्ञा प्राप्त करके जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। जनकपुर के बाग में पहली बार राम और जानकी की मुलाकात होती है। यहां दोनों भाई पुष्प चुन रहे हैं और यहां उसी समय महाराणी सुनयना यानी जानकी की माता सीता को आठ सखीओं के संग जनकबाग में जो गौरी का मंदिर है उसकी पूजा के लिए भेजती है। मेरी व्यासपीठ कहती रही कि पुराने जमाने में भी युवान बेटियां-बेटे बागों में जाते थे। आज भी जाते हैं। जाये, जरूर। लेकिन हेतु का ध्यान रखें। जानकी बाग में गई तो हेतु था भवानी की पूजा। पवित्र हेतु। और राम बाग में गये तो गुरु की पूजा के लिए पुष्प चुनने हेतु।

सीता और राम का मिलन बाग में होता है। बहुत मर्यादा के साथ दोनों एक-दूसरे को समर्पित होते हैं। और जानकीजी फिर भवानी के मंदिर में आकर माँ भवानी की स्तुति करती है। और मन में जो बस गया है सांवरा राम उसको पाने के लिए प्रार्थना करती है। माँ पार्वती की स्तुति जानकी ने की। भुवनेश्वर शिव की धर्मपत्नी भुवनेश्वरी गौरी, पार्वती उसकी स्तुति भुवनेश्वर राम की होनेवाली धर्मपत्नी स्वयं भुवनेश्वरी है, वो भुवनेश्वरी की स्तुति कर रही है। 'मानस' में लिखा है कि सीता के प्रेम और विनय के कारण मूर्ति

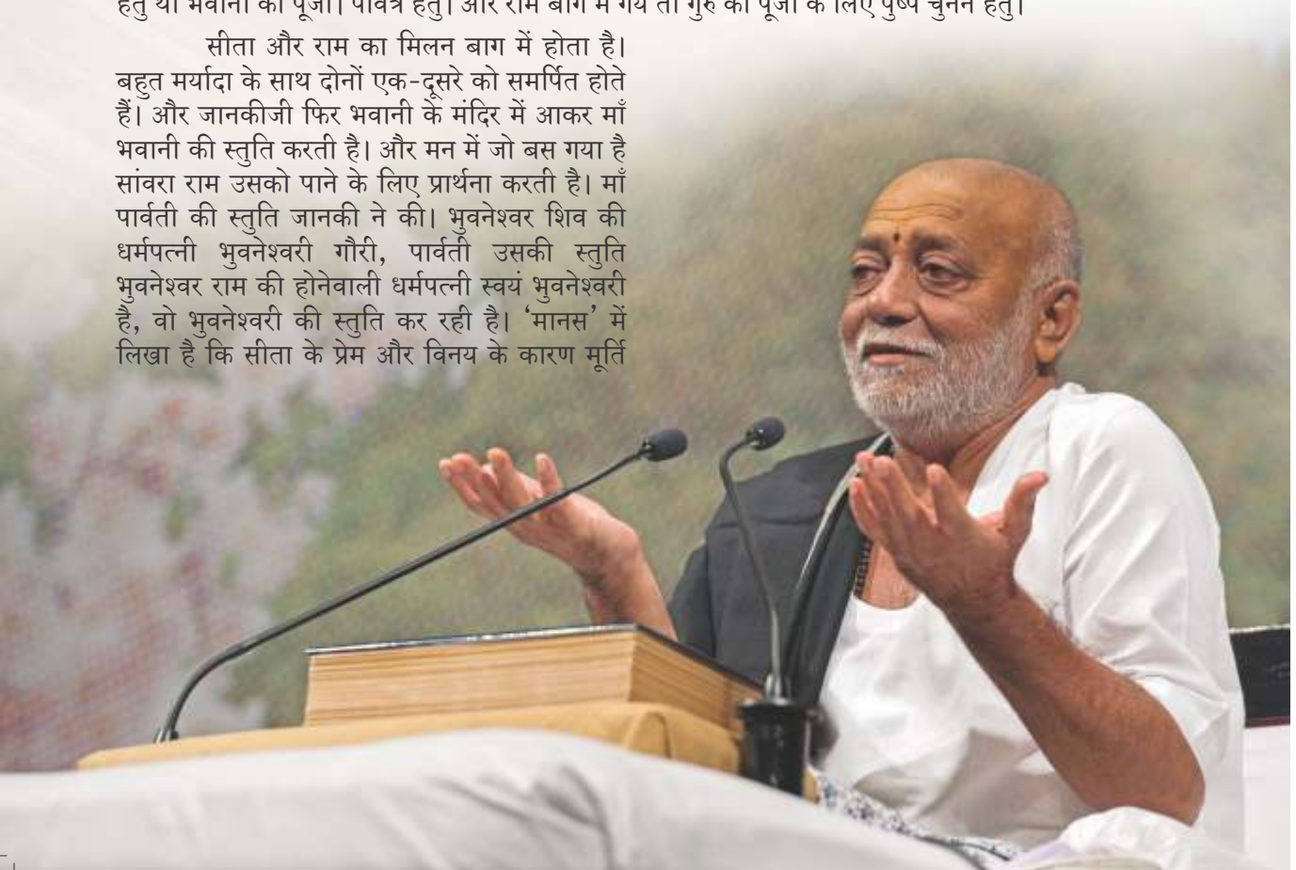

हिलने लगी, मूर्ति मुस्कुराई और मूर्ति बोली। अब बुद्धि स्वीकार नहीं कर पाएगी कि मूर्ति बोले! मूर्ति हिले! लेकिन जानकी स्तुति करे और पार्वती की मूर्ति बोले तो इसमें मुझे कोई आश्चर्य नहीं। वो बोलने की बोली बिलग होगी। जो भी हुआ हो। लेकिन यहां लिखा है, भवानी ने सीता को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारें मन में जो सांवरा बस गया वो तुम्हें मिलेगा। अपने अनुकूल पति प्राप्त करने के लिए कन्याएं गौरी का आशीर्वाद प्राप्त करे। और अपने अनुकूल पत्नी को प्राप्त करने के लिए युवक गुरु की कृपा प्राप्त करे। ये दो सूत्र यहां मिलते हैं।

युवान भाई-बहनों को मुझे इतना ही कहना है कि तीन वस्तु का ध्यान रखना। एक तो वेद का। भले वेद न समझ पाये, न देख पाये। लेकिन वेद कुछ है हमारें देश में, जो हमारा सर्वोच्च शिखर है। वेद का ध्यान रखना। दूसरा, अपने अपने कुल का ध्यान रखना। और तीसरा लोक का ध्यान रखना। लोक, वेद और कुल ये तीनों का जो ध्यान रखे वो कभी कपूत नहीं होगा। तो बेटियां और बेटे वेद, लोक और कुल का ध्यान रखे। और इसीलिए भगवत्चर्चा जब-जब अवसर मिले सुने, पारायण करे, उसको याद करे।

जानकी गौरी का आशीर्वाद लेकर माँ के पास आई। महाराणी सुनयना ने आशीर्वाद दिया। यहां राम-लक्ष्मण फूल लेकर गुरु के पास आये। गुरु ने आशीर्वाद दिया। दूसरा दिन बीता। फिर अगले दिन धनुषयज्ञ की बात थी। जानकी के जीवन का निर्णय होनेवाला था। कई राजे-महाराजे आये हैं सीता को प्राप्त करने के लिए। राम-लक्ष्मण विश्वामित्र संग पहुंचते हैं। धनुषयज्ञ का आरंभ होता है। एक के बाद एक राजा खड़े होते हैं। पराजित होते हैं। धनुषभंग नहीं कर पाये। आखिर में विश्वामित्र के आदेश को प्राप्तकर रामजी धनुषभंग करने के लिए उठते हैं। सबकी निगाहें राम पर लगी हुई है कि ये राजकुमार क्या करेगा? धनुष के पास गये, परिकम्मा की। भगवान शिव का ये धनुष्य है, शिव का स्मरण किया। गुरु को फिर प्रणाम किया। और भगवान ने उसको कैसे उठाया, कैसे चढ़ाया, कोई नहीं देख पाया! सब सोच में डूबे हैं कि क्या हो रहा हैं! उसी समय क्षणार्ध में एक भयंकर आवाज़ होती है और सबने देखा तो धरती पर धनुष के दो भाग पड़े थे! जयजयकार हुआ। जानकीजी जयमाला पहनाती है। इतने में परशुरामजी आते हैं। आखिर में परशुरामजी को राम का जब बोध होता है तब परशुरामजी अपना अवतारकार्य पूरा करके, राम की स्तुति करके बिदा लेते हैं।

दूत जाते हैं अयोध्या। महाराज दशरथजी बारात लेकर आते हैं। मागसर मास में विवाह पंचमी के दिन राम और जानकी के विवाह का निर्णय हुआ। धामधूम से राम और जानकी का मंगल विवाह शुरू होता है। वशिष्ठजी जनकजी से कहते हैं कि आपकी एक ओर बेटी उर्मिला भी है। और छोटे भाई की श्रुतिकीर्ति, मांडवी भी है। हमारें तीन ओर राजकुमार है। यानी चारों का एक साथ ब्याह हो जाये। सीता भगवान राम को समर्पित। उर्मिलाजी लक्ष्मण को। मांडवीजी भरतजी के साथ ब्याही। श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नजी महाराज के साथ ब्याही। वेद और लोक रीति से विवाह संपन्न होता है। कुछ दिन बारात रुकी। उसके बाद बिदाई की बेला आई। पूरी जनकपुरी उदास हो गई। जनक विदेह है, ज्ञानी है। बड़े-बड़े महात्मा उनके पास ज्ञान की दीक्षा लेते थे। लेकिन आखिर वो भी एक बाप है। और पिता जब पुत्री को बिदा देता है तब कोई भी हो ढीला हो जाता है। रास्ते में बारात निवास करते-करते पहुंचती है। अयोध्या में आनंद की कोई सीमा न रही। साक्षात् जगदंबा जानकी आई। अयोध्या की समृद्धि बढ़ने लगी। दिन बीतते गये। महेमानों को बिदा दी गई। आखिर में महाराज विश्वामित्रजी महाराज बिदा मांगते हैं राजपरिवार से। राज परिवार विश्वामित्र के चरणों में प्रणाम करके कहते हैं महाराज, ये सब आपकी कृपा है। मेरी व्यासपीठ सदा कहती है, कोई साधु, कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु इससे मांगना नहीं; लेकिन मांगना है तो इतना मांगना जो 'मानस' में लिखा है-

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

महाराज दशरथजी सपरिवार बोले, हे विश्वामित्रजी, ये सब संपदा आपकी है। हम तो परिवार के साथ आपके सेवक मात्र है। सम्राट को मांगना नहीं चाहिए लेकिन हे भगवन्, आज सम्राट होकर भी मैं आपसे मांग करता हूं कि आपको जब साधना में अवकाश मिले और कभी हमारी याद आ जाये तो हमें दर्शन देते रहिए; हमारें बच्चों पर स्नेह और प्रेम बरसाते रहिए; कृपा बरसाते रहिए। साधुओं से क्या मांगना? यही मांगना कि हमें आपके दर्शन होते रहे। क्योंकि संत के दर्शन से पाप का नाश होता है। साधुदर्शन से प्रसन्नता बढ़ती है। साधु के दर्शन

से पवित्रता का कई प्रकार का स्त्रोत शुरू हो जाता है। विश्वामित्र चल दिए।

'अयोध्याकांड' में गोस्वामीजी अयोध्या की समृद्धि का वर्णन करते हैं। उसके बाद रामराज्य की बात आई और मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि घूमा दी। रामराज्य होते होते रुक गया और राम का वनवास निश्चित हुआ। राम-लक्ष्मण-जानकी वन की यात्रा पर निकलते हैं। अयोध्या बिलकुल शोकमग्न है। यहां राम-लखन-जानकी शृंगबेरपुर पहुंचते हैं। एक रात्रि वहां रहते हैं। दूसरे दिन सुमंत को लौटा देते हैं। केवट भगवान के चरण को धोकर प्रभु को गंगा पार कराता है। और उसके बाद भगवान वहीं से आगे की यात्रा करते हैं। प्रयाग में जाते हैं। भरद्वाजी से मार्गदर्शन लिया कि अब हमें रास्ता बताओ किस मार्ग पर चले ? हम सब को मार्गदर्शन देने के लिए भरद्वाजजी ने चार शिष्य को साथ में भेजे। मानो वैदिक मार्ग बताया। और राम यात्रा करते आगे बढ़े। वाल्मीकि के आश्रम में आये। वाल्मीकिजी से भगवान ने रहने की जगह पूछी कि हम कहां रहे। चित्रकूट का निर्देश हुआ। चौदह स्थान भगवान वाल्मीकि ने राम को बताए कि जिसका अंत:करण, जिसका मन, जिसका अंदर का भाव ऐसा हो इसके दिल में आप निवास करना। आध्यात्मिक स्थान बताए। और उसके बाद राम-लक्ष्मण-जानकी चित्रकूट आकर निवास करने लगे मंदाकिनी के तट पर।

शृंगबेरपुर से सुमंत खाली रथ लेकर लौटा। सुमंत दशरथजी के पास आते हैं। रामप्रेमी दशरथजी आक्रंद कर रहे हैं। आखिर वो क्षण आई कि महाराज दशरथजी कौशल्याजी से कहते हैं कि देवी, सामनेवाली दीवार पर मुझे श्रवण के माता-पिता दिखते हैं। श्रवण के माता-पिता का मुझे शाप था कि पुत्र विरह में हमारी मृत्यु हो रही है। चार पुत्र होते हुए तुम्हारी मृत्यु होगी तब कोई पुत्र हाजिर नहीं होगा। मैं कथाओं में कहता रहता हूं कि कर्म का फल ईश्वर के बाप को भी मिलता है। हम और आप कौन खेत की मूली है! इसीलिए प्रत्येक कर्म के आरंभ में बहुत सोचके कदम उठाने चाहिए। महाराज दशरथजी अपने प्राण के त्याग के समय छ: बार राम मंत्र बोले हैं। तुलसी कहते हैं, जीवन और मरण का यश महाराज दशरथजी का चौदह ब्रह्मांड में फैल गया।

वशिष्ठजी आये। भरतजी आये। पूरी अयोध्या में दु:ख देखा। भरत संत है। अति कोमल दिल है भरत का। बहुत आघात लगा। आश्वासन दे रहे हैं सब। वशिष्ठजी ने सब को संभाला। सरजू के तट पर महाराज का अग्नि संस्कार हुआ। आखिर में भरत ने यही कहा कि मैं सत्ता का आदमी नहीं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं हूं, मैं पादुका का आदमी हूं। हम सब मिलकर राम के पास चित्रकूट जाए और भगवान जो निर्णय दे सो करें। भरत की बात सबको संजीवनी समान लगी। पूरी अयोध्या को लेकर भरतजी चित्रकूट आते हैं। यहां जनकजी भी चित्रकूट आते हैं। सभाएं हुई। आखिर में निर्णय हुआ, भरत लौट जाए। चौदह साल के बाद जिसको जो निर्णय करना, करे। लेकिन पिता की आज्ञा राम वन में रहकर निभाये, भरत राज का संचालन करके निभाए। बिदा की बेला आई। भरत की आंखों को पढ़कर राम को लगा कि भरत को कोई आधार चाहिए। भगवान ने कृपा करके अपनी चरणपादुका भरत को प्रदान की। चरणपादुका विश्व में आश्रितों के लिए सबसे बड़ा आधार है। पादुका कृपा से प्राप्त होती है, कोई प्रयास से नहीं मिलती। भरत पादुका को शिरोधार्य करके अयोध्या लौटे। भरत ने सिंहासन पर पादुका को स्थापित किया। और सेवक बनकर, पादुका को पूछ-पूछकर भरत राजकार्य कर रहे हैं। तुलसीदासजी भरत के त्याग और वैराग की भी चर्चा करते हैं। आखिर में भरत भी वल्कल पहनकर नंदिग्राम में बैठ जाते हैं। 'अयोध्याकांड' को विराम कर दिया।

'अरण्यकांड' में भगवान करीब-करीब तेरह साल चित्रकूट में रुके हैं। अब जो उनके अवतार कार्य का मूल हेतु है वो पूरा करने के लिए प्रभु स्थळांतर करते हैं। अत्रि ऋषि के आश्रम में राम-लक्ष्मण-जानकी आये। अत्रि ने भगवान राम की स्तुति की-

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।।

भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।

माँ अनसूया को जानकीजी मिलती है। नारी के धर्म का उपदेश प्राप्त करती है। और फिर वहीं से राम-लखन-जानकी आगे की यात्रा करते हैं। वन में संत मुनिओं को मिलते हुए प्रभु कुंभज ऋषि के आश्रम में आए। कुंभज ने उसको कहा कि आप पंचवटी में निवास करो गोदावरी के तट पर। राम-लक्ष्मण-जानकी आगे चले। रास्ते में गिधराज जटायु मिले। भगवान गोदावरी के निकट पर्णकुटि बनाकर रहने लगे। लक्ष्मण ने सुअवसर देखकर भगवान राम को पांच आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। भगवान ने उसका उत्तर दिया। इस प्रकरण को 'मानस' के लोग 'रामगीता' कहते हैं।

शूर्पणखा आती है। दंडित होती है। रावण को उकसाया। यहां खर-दूषण को निर्वाण प्राप्त हुआ। रावण योजना बनाकर सीता का अपहरण करने के लिए आता है। इससे पहले भगवान ने योजना बनाकर सीताजी को कहा कि आप अग्नि में समाहित हो जाओ। मुझे लीला करनी है। आपकी प्रतिबिंबित छाया मेरे पास रखो ताकि रावण छाया ले जाए। यहां रावण आता है मारीच को लेकर। भगवान मृगवध के लिए दौड़ते हैं। अवकाश प्राप्त करके रावण यति का वेश लेकर जानकी का अपहरण करता है। जानकी का अपहरण हुआ। जटायु ने कुरबानी दी। रावण जानकी को लेकर अशोकवाटिका में अशोकवृक्ष के नीचे गिरफ्तार कर देता है। यहां भगवान राम मारीचवध के बाद लौटे। सीताविहीन कुटिया देखर प्रभु मानवलीला करते हुए रोने लगे। पंचवटी छोड़कर वो आगे-आगे सीता की खोज में निकल पड़े। जटायु मिलते हैं। जटायु ने सब कथा बताई। और भगवान वहीं से आगे बढ़े। कबंध नामक राक्षस का उद्धार करके भगवान शबरी के आश्रम में आए। शबरी भगवान को देखते ही अत्यंत आनंद में आकर भगवान से कहती है-

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।

अधम जाति मैं जड़मति भारी।।

भगवान कहते हैं शबरीजी, मैं जाति-पाति, कुल-धरम नहीं देखता। मैं तो इन्सान में रही हुई भक्ति को देखता हूं। भगवान नव प्रकार की भक्ति का उच्चारण करते हैं। शबरी प्रभु की स्तुति करके योगाग्नि में देह को प्रज्वलित कर देती है। और भगवान वहां से पंपासरोवर गए। नारद मिले। संवाद हुआ। और उसके बाद संत के लक्षणों की चर्चा हुई।

'अरण्यकांड' के बाद 'किष्किन्धाकांड' शुरू होता है। उसमें भगवान ऋष्यमूक पर्वत के निकट जाते हैं। हनुमानजी की कृपा से राम का दर्शन और राम से मैत्री का परम लाभ सुग्रीव को प्राप्त हुआ। वाली का वध हुआ। सुग्रीव को राज्य मिला। अंगद को युवराजपद मिला और भगवान चातुर्मास के लिए प्रवर्षण पर्वत पर निवास करते हैं। उसके बाद जानकी की खोज का अभियान चला। दशों दिशाओं में बंदरों को भेज दिये। अंगद नायक बना; दक्षिण दिशा में गया जिसमें हनुमानजी भी थे। सब सीता की खोज के लिए निकले। हनुमानजी को प्रभु ने मुद्रिका दी। संपाति ने मार्गदर्शन किया कि सीता लंका में है। सबने अपने-अपने बल की उद्घोषणा की। हनुमानजी चुप रहे। आखिर में जामवंतजी ने हनुमानजी को आह्वान किया। रामकार्य करने के लिए हनुमानजी तैयार हुए। वहां 'किष्किन्धाकांड' पूरा होता है।

'सुन्दरकांड' का आरंभ होता है। हनुमानजी रास्ते के विघ्नों को पार करते हुए लंका में प्रवेश कर गए। हरेक मंदिर में देखा, कहीं माँ जानकी के दर्शन न हुए। एक भवन देखा वहां एक छोटा-सा हरिमंदिर है। आंगन में तुलसी का गमला है। हनुमानजी को लगा कि यहां कोई संत रहता है। विभीषण और हनुमानजी का मिलन होता है। हनुमानजी ने पूछा, जानकी माँ कहां है? विभीषण ने युक्ति बताई। हनुमानजी माँ जानकी के पास पहुंच कर छिप गए। सीताजी का दर्शन किया। इतने में रावण आ गया। रावण ने कुछ भय दिखाया; प्रलोभन दिखाया। जानकी के उपर कोई असर नहीं हुई। रावण एक महिने की मुदत देकर निकल जाता है। जानकीजी बहुत दु:खी होने लगी कि आकाश का कोई सितारा नीचे आकर मुझे जलाकर भस्म कर दे! अब मुझे जीना नहीं है। ऐसे समय में हनुमानजी ने वो रामनाम अंकित मुद्रिका दी। जानकीजी के हाथ में आई और चकित चित्त से जानकी ने मुद्रिका पहचान ली कि ये मुद्रिका कहां से आई? सीताजी विचार करने लगे उसी समय हनुमानजी वृक्ष की घटा में छिपकर रामचंद्र के गुणवर्णन करने लगे। जानकी ने कहा, इतनी सुंदर कथा सुनानेवाला तू है कौन? प्रगट हो। और हनुमानजी प्रगट होते हैं। माँ को परिचय देते हैं। पुत्र समझकर माँ ने आशीर्वाद दिया। उसके बाद माँ से कहते हैं, मुझे भूख लगी है। माँ कहती है, मधुर फल खाना। फल खाते हैं; तरु तोडते हैं। राक्षस पकड़ने आए। किसीको मारा, पिटा; ये सब हुआ।

आखिर में इन्द्रजित आया लंका से और हनुमान को बांधकर रावण की सभा में ले जाता है। रावण कुपित होकर हनुमानजी को मृत्युदंड देता है। विभीषण आ गए और कहा कि दूत को मृत्युदंड न दिया जाय; ओर कोई सजा दी जाय। बात स्वीकार कर ली गई। पूंछ जलाने का प्रस्ताव आया। मूढ़ राक्षसों ने ये स्वीकारा और हनुमानजी की पूंछ को जलाया। इसका मतलब यही कि भक्ति का दर्शन जो कर लेता है, समाज उसकी प्रतिष्ठा को जलाने की कोशिश करेगा ही करेगा। लेकिन भक्ति को जो पूरा पा चुका है, भक्तिमय जिसका जीवन है उसकी प्रतिष्ठा

जलेगी नहीं, जलानेवाले की मान्यता खत्म हो जाएगी। गोस्वामीजी कहते हैं, पूरी लंका को जलाई। विभीषण का घर बच गया। माँ के पास आए। माँने चुडामणि दिया। हनुमानजी लौट आते हैं। सुग्रीव मिले। राम के पास गए। प्रभु के पास पूरी कथा कही। भगवान ने कहा, अब विलंब न करे, जल्दी चले। पूरी सेना चली। समुद्र के तट पर डेरा डाला। यहां रावण की सभा मिली उसमें विभीषण ने सच्ची सलाह दी कि अभी भी अवसर है-

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेश्वर कालहु कर काला।।

ऐसा कहकर राम के भुवनेश्वरपना की चर्चा विभीषण ने की। रावण माना नहीं। विभीषण का त्याग किया। विभीषण मंत्रीओं के साथ भगवान राम की शरण में आता है। राम शरणागत को कुबूल करते हैं। तीन दिन भगवान समुद्र के पास मार्ग मांगने के लिए बैठे हैं। तीन दिन में समुद्र ने कोई जवाब नहीं दिया तब प्रभुने थोड़ा बल का प्रयोग करने का सोचा। समुद्र में खलभली मच गई। ब्राह्मण का रूप लेकर समुद्र शरण में आया। भगवान के पास सेतुबंध का प्रस्ताव रखा। भगवान ने कुबूल किया। समुद्र प्रणाम करके लौट गया। यहां 'सुन्दरकांड' पूरा होता है।

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतु की रचना हुई। भगवान रामेश्वर की स्थापना हुई। प्रभु ने पूजा की। सेतुबंध हुआ शैव और वैश्नव का। सबको जोड़ने की कथा का नाम रामकथा है। भगवान सेतु से पार उतरे। सुबेल पर्वत पर प्रभु ने डेरा डाला। रावण के महारास का भंग किया। दूसरे दिन अंगद संधि का प्रस्ताव लेकर गया। संधि हुई नहीं। युद्ध अनिवार्य हुआ। धमासान युद्ध हुआ। एक के बाद एक राक्षस निर्वाणपद को प्राप्त करने लगे। आखिर में इकतीस बाण से प्रभु ने रावण को निर्वाण दिया। रावण का तेज प्रभु के चेहरे में विलीन हुआ। मंदोदरी ने आकर प्रभु की स्तुति की। विभीषण का राजतिलक हुआ। और यहां जानकीजी को लेकर सब आते हैं। पुष्पक विमान तैयार होता है। हनुमानजी अयोध्या भरतजी को खबर देने पहुंच गए। प्रभु का विमान शृंगबेर उतरा। वो गरीब लोग जिन्होंने परमात्मा के चरण धोए थे; चौदह साल के बाद प्रभु फिर उनके पास गए। सब धन्य हुए। 'लंकाकांड' पूरा हुआ।

'उत्तरकांड' के आरंभ में एक ही दिन बचा है चौदह साल की अवधि में। पूरी अयोध्या आर्तभाव में डूबी है। इतने में हनुमानजी आ जाते हैं। भरत को मंगल समाचार देते हैं। हनुमानजी लौटते हैं। प्रभु को खबर दी। सरजू के तट पर विमान उतरा। भगवान राम-लक्ष्मण-जानकी मित्रों के संग विमान से नीचे उतरे। प्रभु ने अमित रूप धारण करके सबको व्यक्तिगत साक्षात्कार करवाया। ब्राह्मणों को पूछकर वशिष्ठजी ने कहा, अब आज ही राजतिलक कर दे। सब ने स्नान किया। वस्त्र, अलंकार, राजपोशाक धारण किया। दिव्य सिंहासन मंगवाया। राम-जानकी भूमि को, सूर्य को, दिशाओं को, ब्राह्मणों को, प्रजाजनों को, माताओं को, गुरु को प्रणाम करके गादी पर बिराजमान हुए और वशिष्ठजी ने विश्व को रामराज्य और प्रेमराज्य देते हुए तिलक किया।

दिव्य रामराज्य का वर्णन गोस्वामीजी ने किया है। उसके बाद प्रभु की नरलीला आगे बढ़ी और जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया, लव और कुश। तीनों भाईओं के घर भी दो-दो पुत्र हुए हैं। लव-कुश का नाम कहकर, रघुवंश के वारिश का नाम बताकर कथा को वहां रोक दी गई। उसके आगे की कथा में सगर्भा स्थिति में जानकी का त्याग, ये अपवादवाली कोई कथा तुलसी लेते नहीं। तुलसी ने संवाद ही स्थापित करना था। उसके बाद रामकथा में कागभुशुंडिजी का चरित्र है। गरुडजी ने सात प्रश्न पूछे और कागभुशुंडि ने सात प्रश्नों का उत्तर दिया। वो तात्त्विक कथा है। गोस्वामीजी भुसुंडि के द्वारा रामकथा गरुड के सामने विराम करवाते हैं। यहां भगवान शिव पार्वती के सामने कथा विराम करते हैं। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी के सामने किया कि नहीं, प्रगट नहीं है। लेकिन तुलसी आखिर में अपने मन को समझाते हुए रामकथा को विराम देने के लिए आगे बढ़ते हैं तब कहते हैं-

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

तो तुलसी अपनी कथा को विराम देने की ओर है तब 'मानस-भुवनेश्वर', जो इस नव दिवसीय कथा का केन्द्रबिंदु था। हम और आप 'भुवनेश्वर' शब्द लेकर उसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे थे। आज आखिर में मुझे जो कहना है वो ये है कि प्रत्येक भुवन का एक-एक भय है। कोई भुवन भयमुक्त नहीं है। इस पर विज्ञान

का भी ध्यान रहना चाहिए; अध्यात्म का भी रहना चाहिए; हम सबका रहना चाहिए। और वो चौदह भुवन; पांच ज्ञानेन्द्रिय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। पांच कर्मेन्द्रिय-आंख, कान, नाक, मुख, त्वचा। और अंत:करण चतुष्टय-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। कुल मिलाकर ये आध्यात्मिक चौदह भुवन है। चौदह भुवन का भुवनेश्वर भगवान राम है। ये परमतत्त्व है। लेकिन चौदह भुवन का कोई न कोई भय है। संक्षेप में जरा उनको सुनते जाए।

पहले कर्मेन्द्रिय से शुरू करूं। अपनी आंखें कर्मेन्द्रिय है। आंख का एक भय है कि खुलते ही उसका देखना शुरू हो जाता है। उसके सामने कोई भी दृश्य आता है वो उसको कुबूल करने लगती है। बुद्धपुरुषों का मानना है कि आंख का भय है कि ये उसकी प्राकृतिक स्थिति उसके कारण ये जो अच्छे मंजर नहीं है उसको कहीं अपने में स्थापित न कर ले। आंख का भय है गलत दर्शन। और इससे मुक्त करता है भुवनेश्वर का भजन। वाणी कर्मेन्द्रिय है। वाणी का भी भय है कि हम वाणी से झूठ न बोल ले। एक तो वाणी से झूठ न निकले इसलिए अंग्रेजी में तो दो बार सोचना कहा है। लेकिन मेरी व्यासपीठ कहती है कि तीन बार सोचो कि कहीं झूठ न निकल जाए अथवा तो जहां तक हो सके समझदारीपूर्वक मौन रहो ताकि वाणी का झूठ, भय मिटे। कान का भय है गलत श्रवण। क्योंकि उसको तो दरवाजा ही नहीं है। कोई भी निंदा-कूथली करके हमारे कान में कुछ भी डाल सकता है। इसीलिए तो 'वाणीगुणानुकथनेश्रवणेकथायां।' अच्छी बातें सुने। वर्ना ये भय है कान का।

स्पर्श करने से दो वस्तु प्रगट होती है। विकार भी प्रगट होता है, संस्कार भी प्रगट होता है। आप किसी बुद्धपुरुष का पैर स्पर्श करो तो बहुधा संस्कार प्रगट होता है। और यही स्पर्शेन्द्रिय, यही कर्मेन्द्रिय ध्यान न रहा तो किसीको स्पर्श करने से विकार भी प्रगट हो सकता है। ये भय है स्पर्शेन्द्रिय का। नाक ये भी एक इन्द्रिय है। उसके भी कोई दरवाजे नहीं है। घ्राणेन्द्रिय परख की इन्द्रिय मानी गई है। जिसकी घ्राणेन्द्रिय बहुत सतेज होती है वो व्यक्ति को पकड़ लेती है कि साधु है कि शैतान। और ये सेन्स कुत्ते में बहुत होती है। इसीलिए दुनिया कुत्ते का प्रयोग करती है। वो पकड़ लेता है। कहीं ये घ्राणेन्द्रिय गलत दिशा में काम न करे। ये उनका भय है।

उसके बाद पांच ज्ञानेन्द्रिय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। इसको कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय जिस रूप में आप सोचो। अब वाणी के साथ शब्द जुड़ा है। और शब्द का भय अभी मैंने कहा कि कहीं गलत बोल न दे, कहीं झूठ न बोल दे। स्पर्श का भय है विकार प्रगट न हो जाए। 'कोलाहलोभयात्कर्णे।' अत्यंत कोलाहल ये कर्ण का भय है। इससे कर्ण को बचाये। शब्द कोलाहल के रूप में न आए, वर्ना भय है। विकार के रूप में न आए वर्ना भय है। रूप में अहंकार का भय है। नारद को रूप मिला तो उसके हृदय में अहंकार आने लगा कि मेरे समान कोई रूपवाला दुनिया में है ही नहीं! रस का भय है। रस तो अमृत भी है, रस तो जहर भी है। रस शरबत भी है, रस शराब भी है। वहां कही अविवेक न हो जाए। गलत प्याला न पकड़ लिया जाय। उसका वर्गीकरण करना पड़ेगा विवेक से; पृथ्थकरण करना पड़ेगा; ग्राह्य क्या है, अग्राह्य क्या है। फिर गंध की ये परख की जो शक्ति है उसको वो गंवा न दे। ये सब भय है। ये भुवनों का भय है।

अब मुझे मूल जो कहना है वो ये है। चार जो अंत:करण चतुष्टय का भय है। मन का भय, बुद्धि का भय, चित्त का भय और अहंकार का भय क्या है? मन का भय है 'मानस' के संदर्भ में दुर्वासना। हमारे मन में बार-बार दुर्वासना प्रगट होती है, दुराशा पैदा होती है। यद्यपि

पांच ज्ञानेन्द्रिय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। पांच कर्मेन्द्रिय-आंख, कान, नाक, मुख, त्वचा। और अंत:करण चतुष्टय-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। कुल मिलाकर ये आध्यात्मिक चौदह भुवन है। चौदह भुवन का भुवनेश्वर भगवान राम है। ये परमतत्त्व है। लेकिन चौदह भुवन का कोई न कोई भय है। अंत:करण चतुष्टय का भय क्या है? मन का भय, बुद्धि का भय, चित्त का भय और अहंकार का भय क्या है? मन का भय है दुराशा अथवा दुर्वासना। बुद्धि का भय है जड़ता अथवा तो भ्रष्टता। विक्षिप्तता चित्त का भय है। और अहंकार का भय है मूढ़ता।

आशा 'भगवद्गीता' में वंदनीय है। हम जीव है कि आशा करे। चलो, कथा सुनने की आशा करेंगे। लेकिन तुलसी कहते हैं, दुराशा न हो। हम संसारी है; आशा करे, इच्छा करे लेकिन दुराशा न हो। दुराशा मनभुवन का भय है। दुराशा से बचने के लिए बहुत सावधान रहे हम और आप। मैं उपदेश नहीं दे रहा हूं। मैं आपके साथ मेरा पक्का कर रहा हूं। मेरा होमवर्क चल रहा है आपके साथ। अपना स्वाध्याय हो रहा है।

मन का भय है दुराशा अथवा दुर्वासना। बुद्धि का भय है जड़ता अथवा तो भ्रष्टता। बुद्धि या तो भ्रष्ट हो जाती है अथवा तो जड़ हो जाती है। ये उनका भय है। चित्त का खतरा है विक्षिप्त दशा। संधान नहीं हो पा रहा है; चित्तानुसंधान जिसको कहते हैं। विक्षिप्तता चित्त का भय है। और अहंकार फिर एक बहुत बड़ी मूढ़ता का भय लेकर खड़ा है। 'रामचरित मानस' में उसके दृष्टांत है। मन की दुराशा ताडका है। भुवनेश्वर ने इस भय को तोड़ा। बुद्धि का भय है जड़ता और भ्रष्टता, वो है अहल्या। भगवान राम भुवनेश्वर बनकर बुद्धिरूपी भुवन का भय, जड़ता और भ्रष्टता से अहल्या को मुक्त करते हैं; चैतन्य प्रदान कर देते हैं। चित्त का भय है अनुसंधान टूटना; बार-बार ब्रेक। चित्त का भय है अनुसंधानरहितता। और चौथा है अहंकार। उसमें मूढ़ता होती है। शंकर के धनुष्य को अहंकार कहा है। और इस अहंकार को राम ने तोड़ा। अहंकार का भय है ये मूढ़ता।

तो पांच ज्ञानेन्द्रियरूपी भवन के अपने भय; जुड़ी हुई कर्मेन्द्रिय, उनके अपने भय। और मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के ये भय है। चौदह भुवन के ये भय अध्यात्म जगत में विशेष रूप में उसकी चर्चा करने से विशेष सरलता पड़ती है। समय अभाव से में संक्षिप्त में केवल संकेत कर रहा हूं। मुझे बहुत कहना है। अल्लाह मुझे समय दे। परमात्मा मुझे वक्त दे ताकि मैं बोलता रहूं, बोलता रहूं। मेरा भी पक्का हो जाय और आपको चस्का लग जाय! आप इससे छूट न पाए! बहुत अच्छा लग रहा है कि मैं बोलूं।

मेरे भाई-बहन, अब आप कहेंगे कि चौदह भुवन के भय की चर्चा आप क्यों लाए आखिर में? मुझे तो आपको प्रसन्न करके जाना है; मुस्कुराहट देकर जाना है। और मैं भयभीत करके जाऊं ये तो ठीक नहीं। लेकिन नहीं, भुवनेश्वर शंकर के 'महिम्नस्तोत्र' में पुष्पदंत कहता है महादेव, तेरा एक व्यसन है; भुवनेश्वर, तू ही एक ऐसा है कि चौदह भुवन के भय को भंग कर दता है। चौदह भुवन के भय से विश्व को भयमुक्त कर सकता है। शंकर भांग का व्यसनी नहीं है, भयमुक्त करने का व्यसनी है कि दुनिया को भय से मुक्त कर दिया जाय।

ऐसे लिंगराज महादेव भगवान भुवनेश्वर की नगरी में अवसर मिला चैत्र के इन पावन दिनों मे इसीलिए मेरी व्यासपीठ आपके सामने गा रही थी। तो शिव ने कथा पूरी कर दी। बाबा भुसुंडि ने भी पूरा कर दिया। याज्ञवल्क्य महाराज गाते रहे कि पूरा किया कि जो हो। और कलिपावनावतार पूज्य गोस्वामीजी ने अपने मन को सावधान करते हुए कथा को विराम दिया। चारों परम आचार्यों की कृपाछांया में बैठकर ये व्यासपीठ आपके सामने बात कर रही थी। अब मैं भी अपनी कथा को विराम देने की ओर आगे बढ़ूं। पहले तो मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं पूरे आयोजन की सुचारु व्यवस्था के लिए। सबने बहुत आनंद महसूस किया इसीलिए पूरे आयोजन के लिए और पूरे आयोजन में निमित्तमात्र यजमान परिवार से लेकर उसके साथ जिसने इस प्रेमयज्ञ को सुचारु रूप में संपन्न होने के लिए जो-जो आहुतियां डाली है, सभी के प्रति मेरी प्रसन्नता और सभी की प्रसन्नता के लिए मेरी प्रभु प्रार्थना।

बाप! युवान भाई-बहनों को मैं विशेष संबोधन करता रहता हूं। नव दिन रामकथा से, सूत्रों से, प्रसंगों से, पात्रों से, अन्योन्य संदर्भ में आनेवाली बातों से आपके जीवन में कोई बात आपके दिल तक पहुंची हो तो उसको अपनी समझकर उसको संभालिएगा। मुझे लगता है, जीवन के किसी मोड पर ये आपको मदद कर सकती है। आपकी प्रसन्नता में वृद्धि कर सकती है। आप सभी ने इतने आदर के साथ भगवद्कथा का श्रवण किया, शिस्त के साथ आप सब ने इस प्रेमयज्ञ में अपने-अपने विवेक का योगदान दिया। मेरे सभी श्रोताओं को और सभी को व्यासपीठ से मे मेरी शुभकामना और सब के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूं। तो 'मानस-भुवनेश्वर' ये नवदिवसीय रामकथा आईए, हम सब मिलकरके लिंगराज महादेव भगवान भुवनेश्वर को ये सत्कर्म समर्पित कर दें, 'हम इस वाणी से आपका अभिषेक, श्रवण से आपका अभिषेक, आयोजन से आपका अभिषेक, व्यवस्था से आपका अभिषेक कर रहे थे नव दिन के लिए। हे भुवनेश्वर प्रभु, हमारा ये अर्घ्य, हमारा ये अभिषेक कुबूल करे।'

मानस-मुशायरा

उलझनों में ख़ुद उलझकर रह गये वो बदनसीब,
जो तेरी उलझी हुई जुल्फ़ें को सुलझाने गए।
इससे बढ़कर क्या मिलती हमें दाद-ए वफ़ा,
हम तुम्हारे नाम से दुनिया में पहचाने गये।।

– पारस जयपुरी

कभी कश्ती, कभी साहिल, कभी मझधार से यारी।
किसी दिन लेके डूबेगी तुम्हारी ये समझदारी।

●

ज़रा देख यही फ़र्क मेरी फ़िक्र और तेरी सोच में।
मेरे दिल में दर्दे जहान है तुझे सिर्फ़ अपना ख़याल है।

– मासूम गाज़ियाबादी

ये मिसरा नहीं है ये वजीफ़ा है मेरा,
ख़ुदा है महोब्बत, महोब्बत ख़ुदा है।

●

मेरे रहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।

– ख़ुमार बाराबंकवी

पहले ख़ुद को ख़ाली कर।
फिर ख़ुद की रखवाली कर।

– फ़हमी बदायूंनी

मज़ा देखा मियां सच बोलने का?
जिधर तू है उधर कोई नहीं है!

– नवाज़ देवबंदी

क्वचिदन्यतोऽपि

ओशो का पिंड तर्क, तत्त्व, तक, तत्त्व और तंत्र जैसे पांच तत्त्वों से बना है

वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी में ओशो चेर के उद्घाटन समारोह में मोरारिबापू का उद्बोधन

सब से पहले ओशो की परम चेतना को मेरा प्रेमपूर्वक प्रणाम। वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी में ओशो की स्थापना हो रही है ऐसे एक सगुणमय अवसर पर मंच पर बिराजित मेरे परम स्नेही और आत्मीय सत्यवेदांतजी, मेरे परम स्नेही इस युनिवर्सिटी के कुलपति आदरणीय दक्षेशभाई, उपकुलपति रावलसाहब और आदरणीय पांडेसाहब, इस सभागृह में उपस्थित ओशो को, ओशो के विचारों को प्रेम करनेवाले सभी भाई-बहनों को यहां से मेरा प्रणाम। सब से पहले मैंने दक्षेशभाई से पूछा कि मैं हिन्दी में बोलूं कि गुजराती में? क्योंकि सत्यवेदांतजी हिन्दी में बोले। मैंने पूछा तो बोले बापू, आधा-आधा रखिए। मैंने आप से पूछा कि आप की क्या राय है? बहुत सुंदर जवाब दिया, मैं हिन्दीभाषी हूं। लेकिन जो शुरू हो गया, आगे बढ़ाऊं। बहुत हिन्दीभाषी है यहां। कहा जाता है, ओशो जैसा हिन्दी शब्दों दुनिया में कोई नहीं बोल सकता। मुझे कोई ओशो की किताब गुजराती में दे, अंग्रेजी में दे तो तो मेरा दिल खुश! मैं समझता था कि कोई गुजराती में दे तो मैं तुरंत कहता हूं कि बहुत-बहुत शुक्रिया। लेकिन आप मुझे हिन्दी में दीजिए उसकी किताब क्योंकि हिन्दी में उसके साथ पढ़ते-पढ़ते मैंने ओशो की आवाज़ सुनी है। साहब! मैं व्यासपीठ का आदमी आज ओशोपीठ के अवसर पर बोल रहा हूं। आप ओशो के पास जो बैठे, उसकी सेवा में रहे, उसकी दृष्टि पाई, उसको सुना। वो तो सब बड़भागी है ही। लेकिन चैतसिक संवाद भी कोई कम महत्त्व का नहीं होता।

मैंने कई बार ओशो के बारे में जब साहित्यिक संगोष्ठी में मुझे कुछ कहने का अवसर मिला तो कहा है, ओशो को जब-जब मैंने पढ़ा तो मुझे ओशो की आवाज़ सुनाई देती है। वो किस रूप में बोलते हैं? मैंने दो बार ओशो के दर्शन किए। एक बार मुंबई में। शिवाजीपार्क में उस समय आप आचार्य रजनीश के रूप में पूरे देश में परिभ्रमण करते थे। आप 'भगवद्गीता' के शायद दसवें अध्याय का सायंकालीन प्रवचन करते थे शिवाजीपार्क के मैदान में। और मैं शाम को श्रवण करने दूर बैठकर सुनता था। ये मेरा पहला ओशोदर्शन और ओशोश्रवण था। दूसरी बार आपने घूमना बंद कर दिया और पूणे में जाकर 'एकान्ते सुखमास्यताम्', जगद्गुरु आदि शंकराचार्य की तरह पूणे में जब बैठ गए तब मैं एक बार आप का सुबह का प्रवचन सुनने के लिए मैं गया तो व्यवस्थापकों ने मेरी काली शॉल ले ली। जो उसके नियम थे कि ये सब आप नहीं ले जा सकते। कोई बात नहीं। शॉल ही ले ली थी। लेकिन मुझे लगा कि मैं जाऊं शायद मेरे गले की माला ले लेते तो भी मैं निकाल देता। क्योंकि किसी भी बुद्धपुरुष को सुनना हो तो अपनी शर्त पर नहीं सुना जाता; अपने आग्रहों के आधीन नहीं सुना जाता। और मैं गया। लेकिन मेरा दुर्भाग्य तो न कहूं लेकिन वो स्पीच, वो पूरी प्रवचन शृंखला अंग्रेजी में थी। यद्यपि ओशो का इंग्लिश बहुत प्यारा था; बहुत प्यारा था। कुछ उच्चार तो खुद ने अर्जित किए थे इंग्लिश के जो मूलभूत भाषा हो उससे भी। अब विद्रोह ही करना! लेकिन मेरे से कोई ओशो से विद्रोह के बारे में कहते हैं तो मैं एक साधु के नाते से बहुत स्पष्ट अभिप्राय देता हूं कि विश्व में जिन लोगों ने विद्रोह किया है; और ओशो ने जो विद्रोह किए थे और जैसे दुष्यंतकुमार को याद किया -

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

और ये दुष्यंतकुमार के शब्दों के माध्यम से सत्यवेदांतजी ने कहा कि ओशो जैसा हंगामा किसने खड़ा किया? लेकिन साहब! एक वस्तु याद रखें। बुद्धपुरुष विद्रोही होते हैं; होने चाहिए। लेकिन, लेकिन उस विद्रोह के पीछे किसीके प्रति दुद्रोह नहीं होता। ये दुद्रोहमुक्त विद्रोह होता है। तो वो अपनी ढ़ंग से अंग्रेजी बोलते थे। लेकिन शब्द समझ में न आए तो क्या चिंता? एक नाद, एक दिव्य आवाज़ जो श्रवणपुट को प्रसन्न कर रही थी। वो आनंद मैंने लूंटा। तो दो बार दर्शन, दो बर सुनने का अवसर मिला।

मुझे कुछ बातें आप के सामने जो रखनी है वो मेरी जिम्मेदारी से ये है कि ओशो के जब पहली बार मैंने दर्शन किए शिवाजीपार्क में वो सफ़ेद धोती, सफ़ेद वस्त्र जो पहनेते थे; वो भी शायद खद्दी के। दूसरी बार जब पूणे में दर्शन किया तब तो वो पूरा जो पहनते थे जो उसका वो था। लेकिन मेरी तलगाजरडी आंखों में न कोई अहोभाव, न कोई अधोभाव; ये दोनों से मुक्त होकर ओशो का जो अवलोकन किया वो मैं आप के साथ शेर करना चाहता हूं। मुझे पहले तो ये लगा कि ये आदमी है तो पंचभौतिक शरीरधारी। नि:शंक, हम सब पांचभौतिक शरीर के पूतले हैं। एक इन्सान पांचभौतिक होता है। हमारे 'मानस' में लिखा है-

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित अति अधम सरीरा ।।

लेकिन मेरी तलगाजरडी आंखों ने सालों पहले जो अवलोकन किया वो मैं पेश करूं। तो मुझे पहले ये लगा सत्यवेदांतजी कि ये आदमी पंचभूत का पूतला तो है ही लेकिन उसका एक्स-रे लिया जाय तो मुझे लगा कि ये आदमी पांच वस्तु से बना है। आप सहमत हो न हो इसकी मैं कोई चिंता भी नहीं करनेवाला। चालीस मिनट बोलकर निकल जानेवाला हूं! उसके बारे मैं कुछ नहीं जानता था। लेकिन याद रहा है-

कोई आया भी है और ठहरा हुआ भी है।
घर की दहलीज़ पे उजाला है बहुत।

इस विश्व के मोड़ पर, इस विश्व की चौखट पर बहुत उजाला है। इसलिए कहना चाहिए कि कोई आया है। कोई गया नहीं, पास हुआ है। जो पृथ्वी नामक ग्रह से

पास हुआ है। ओशो नेवर बोर्न! मारुं अंग्रेजी खोटुं पड़े तो माफ़ करजो, हा! आ युनिवर्सिटीमां बोलवानुं छे साहेब! अभी सत्यवेदांतजी कह रहे थे कि ये कलियुग नहीं है। ये बहुत अच्छा युग है। लेकिन तीन बार मेट्रिक में फैल हो और उस आदमी को युनिवर्सिटी बुलाए तो इससे बड़ा कलियुग कौन हो सकता है? लेकिन मैं शत-प्रतिशत सहमत हूं कि 'रामचरित मानस' में साड़े चार सौ-पांच सौ साल पहले ओलरेडी गोस्वामीजी ने लिखा है कि-

कलजुग सम जुग आन नहीं ।

कलियुग के समान कोई दूसरा ऐसा युग नहीं है। 'जो नर कर बिस्वास।' अभी तो कलियुग केवल कली है। पूरा खिला कहां है? ओशो ने उसको सींचा है। ओशो की आंतरिक ऊर्जा और बहिर् उजास के कारण यह कली विकसित हुई है। और अभी ओर विकसित होनेवाली है। तो कलियुग को बुरा मत कहे। वो अभी कली है। खुल रही है। टागोर की बोली में गुलाब के फूल की एक-एक पंखुड़ी खुल जाय, पूर्णरूपेण खिल जाय उसीको कहते है निर्वाण। तो ओशो नेवर बोर्न, नेवर डाईड! ओशो के बारे में कहा जाता है कि जिस पर अस्तित्व ने फूल बरसाएं है। लेकिन मोरारिबापू को अपनी जिम्मेदारी से 'ओशो' शब्द का यदि अर्थ करना है; 'ओशो' शब्दब्रह्म का अर्थ करना है तो ऐसा करे। 'ऑन' का स्पेलिंग क्या होता है? ओ, डबल्यू, एन; ऑन। अपना-ऑन, ठीक है? 'सायलन्ट' का स्पेलिंग? मैं परीक्षा नहीं ले रहा हूं। सायलन्ट 'एस' से शुरू होता है। ठीक है? 'हेपीनेस' का अथवा 'होलीनेस' का स्पेलिंग 'एच' से शुरू होता है। फ़िर 'ओ', ऑन का पहला अक्षर। मोरारिबापू मानता है कि ओशो का अर्थ है 'ऑन सायलन्ट।' शास्त्र अर्जित नहीं; परंपरा अर्जित नहीं; वातावरण अर्जित नहीं; प्रयास द्वारा निर्मित की गई शांति नहीं; मौन नहीं; ऑन सायलन्ट। जो आदि-अनादि काल से बुद्धपुरुषों में रहा है। 'ओ' का अर्थ ऑन; 'एस' का अर्थ सायलन्ट। ऑन सायलन्ट एन्ड ऑन हेपीनेस या ऑन होलीनेस। संस्कार द्वारा लाया गया पावित्र्य नहीं। लेकिन एक प्रसन्नता, एक हेपीनेस अथवा पावित्र्य। वो भी ऑन सायलन्ट अेन्ड ऑन हेपीनेस अथवा ऑन होलीनेस। ऑन; खुद की प्रसन्नता, खुद की पवित्रता, खुद का मौन वो है ओशो। जिसको अपना मौन न हो और जिसको अपना पावित्र्य न हो वो ओशो अवस्था से बहुत दूर है।

तो ऐसे ओशो को मेरी तलगाजरडी आंखों से देखना है। उसके प्रति अहोभाव नहीं, अधोभाव नहीं। उसकी उसको जरूरत नहीं है। मैं छोटा था तब से ओशो के बारे में इधर-उधर से सुनता रहा। कई लोग कहते, हम ओशो को सुनते हैं अथवा तो जैसे कई लोगों की फ़ेशन बन गई थी हम कृष्णमूर्ति के लिसनर्स है। ये फेशन, हराम कुछ जाने तो कृष्णमूर्ति के बारे में! ओशो को सुनना फेशन नहीं होनी चाहिए। मुझे कहने दो ओशो को फेशन से सुनना ओशो परमतत्त्व का अपमान है। ओशो को स्वभाव से सुनो। और स्वभाव आत्मा से निकट होता है उतना न मन है, न बुद्धि है, न चित्त है, न अहंकार है। स्वभाव ही आत्मा के बिलकुल निकट ज्यादा से ज्यादा परिचय करा सकता है।

तो जब मैंने ओशो को नहीं सुना लेकिन ओशो के बारे में जो बातें मैं सुनता था; जो सुना है वो शायद इतना न भी समझ पाया हो लेकिन शुक्रगुजार हूं मैं उसका कि उसने मुझे ओशो की कुछ बातें कही जिसको मेरे सद्गुरु भगवान की कृपा से मैं धीरे-धीरे समझने में मैं सक्षम हो गया। और ऐसे सुनते-सुनते ओशो के बारे में मेरी आंखों ने जो देखा है कि ये पांच भूत का पूतला मात्र आदमी नहीं है उसका पिंड जो है वो पांच-पांच वस्तु से बना है। जैसे हमारे 'रामचरित मानस' में लिखा है कि वाल्मीकिजी राम से कहते हैं कि राम, आप को देखता हूं तो लगता है कि हाथ-पग है; आप खाते हैं, पीते हैं, ऊठते हैं और नंगे पैर पिता की आज्ञा मानकर निकल पड़े हैं। पत्नी साथ में हैं, भाई है, ये है, सब देखता हूं। तो आप का शरीर भी पंचभूत का है ही लेकिन मैं बराबर देखता हूं तो मुझे लगता है कि 'चिदानंदमय देह तुम्हारी।' आप का देह, आपकी काया, आपका कलेवर चिदानंदमय है।

ओशो के बारे में क्या कहूं? ये मेरी जिम्मेदारी से बोल रहा हूं साहब! आप कुबूल करे या न करे कोई

चिंता नहीं। कोई मुझे कहे कि ओशो के प्रति इतना बड़ा अहोभाव मोरारिबापू व्यक्त करे? तो कर रहा हूं। आप धर्मजगत में प्रवचन करनेवाले रात को रोज अपने तकिये के नीचे ओशो की केसेट सुनते-सुनते सुबह नौ बजे ओशो का पुण्य स्मरण किए बिना तुम्हारे नाम से सूत्रपात करते हो इससे बड़ा अपराध कौन हो सकता है! पर सही धार्मिक व्यक्ति किसीको अछूत नहीं समझ पाएगा। धार्मिक व्यक्ति कैसे किसीको अस्पृश्य समझेगा? 'आनो भद्राः क्रतवो...', ये जो ऋग्वेद हमारा वेद कहता है कि जहां से मुझे शुभ विचार प्राप्त हो उसको लो। राशिद का एक उर्दू का बड़ा प्यारा मक्ता है। गज़ल तो मुझे पूरी याद नहीं। लेकिन उसका मक्ता है। आख़िरी शे'र को मक्ता कहते हैं न?

राशिद किसे सुनाऊं गली में तेरी गज़ल?
शायर की पीड़ा देखिए, शायर की वेदना देखिए।
राशिद किसे सुनाऊं गली में तेरी गज़ल?
उनके मकां का कोई दरीचा खुला न था।

मैं तो बनज़ारा की तरह, बाबुल की तरह, बावा की तरह गाता निकला लेकिन उसकी गली में किसीके मकान की एक भी खिड़की खुली नहीं थी! मेरे विचार जाये तो जाये कैसे? खिड़कियां खुली रखो साहब! तो मेरे पर तो बहुत लोग..! और धर्मजगत तो धर्मजगत होता है! उसमें भी धर्मधुरंधर जगत तो इससे बहुत ऊंचा! उसमें भी ख़बर नहीं क्या क्या दर्जे हैं? मैं न आस्तिक हूं साहब! मुझे आप साहब जैसे बुद्धिजीवीओं के सामने कहना है। मोरारिबापू न आस्तिक है, न नास्तिक है; मोरारिबापू वास्तविक है। मैं कोई दोरा-धागा में नहीं मानता। हां, पूजा करता हूं, शिव अभिषेक करता हूं; मेरे ठाकोरजी की पूजा करता हूं। फूल चढ़ाना मुझे अच्छा लगता है क्योंकि एक फूल दूसरे फूल पर चढ़े इसके समान सुंदर संगति ओर कौन हो सकती है? मैं कृष्ण को फूल चढ़ाऊं तो कृष्ण भी एक फूल है। और उसने बनाया हुआ एक दूसरा फूल, दो फूल मिल रहे हैं। और दो नदीओं का मेल अगर इतना पावन कहलाता है तो क्यों न जहां दो दिल मिलते हैं, स्वर्ग वहां बस जाता है।

हर मौसम है प्यार का मौसम होगा कि नहीं...

आगे की पंक्ति अभी रहने दो। मुझे तो कोई परहेज़ भी नहीं। फिलम का गीत गा लेता हूं मेरी चौपाईओं के साथ। मेरे लिए हर वस्तु चौपाई है अगर दृष्टि हो तो। तो बाप, क्यों अस्पृश्य? ओशो का नाम लेकर अहोभाव के साथ कहना चाहिए कि ये विचार ओशो से लिया है।

ओशो के बारे में बोलना आनंद आता है साहब! और जिस पर बोलने में आनंद आए वो भजन है। वो साधना है। और ऐसे प्रवचन करने के लिए मेरे उपनिषदकार ने हमें सिखाया है 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।' उसमें प्रमाद न करो। मुझे दक्षेशभाई कहते हैं बापू, कथा करो न ओशो पर। मैंने एक कथा ओशो के उपर की है; पूणे में की है। थोड़ा धर्मजगत को तकलीफ़ भी हुई है! किसीको तकलीफ़ हो तो हम करे भी क्या? इसे हम क्या कर सकते? लेकिन मैंने की। और मेरा विषय था 'मानस-नृत्य।' क्योंकि ओशो नृत्य करते हुए धर्म की बात लेकर आये थे। और मैंने ये पूरी कथा ओशो की समाधि को समर्पित की है। ये एक योग था साहब! और केम्पस कथा का भी योग होगा तो आई विल ट्राय। क्योंकि युवानों के पास जो वस्तु नहीं पहुंचायी जाएगी तो मुश्किल होगी। बूढ़े-बुझर्ग सब वंदनीय है। यस, मार्गदर्शक है। नो डाउट। निःशंक वो हमारे मार्गदर्शक है। हमारे 'रामायण' में जामवंत मार्गदर्शक है। लेकिन जरूरत है अंगद और हनुमान की। और उसको मार्गदर्शन देनेवाले समाज के प्रौढ़ और प्रज्ञावान जामवंतों की। पर एक वस्तु याद रखना, उम्र का हिसाब गौण होता है; बाकी बुद्धपुरुष कभी बूढ़ा नहीं होता। और बूढ़ा होने का अधिकार ही नहीं है बुद्धपुरुषों को। सद्गुरु को वृद्ध होने का अधिकार नहीं है। इसलिए शिव को हमने कभी वृद्धावस्था नहीं दी; न राम को, न कृष्ण को। ओशो ने भी उस पर अपना वक्तव्य दिया है। तो सुविचार जहां से मिले, लेना चाहिए। अपने तकिये के नीचे कैसेट डालकर सुनना! प्रवचनों में बिना नाम लिए बोलना ये पहला अपराध है।

तो मैं खुले में कहता हूं और मेरा मनोरथ था, मुझे ओशो पर एक कथा कहनी है। मैंने कई बार कहा

और आपके सामने भी कहूं कि ओशो ने इतने सब्जेक्ट पर अपना प्रवचन और विचार प्रस्तुत किए हैं साहब कि इनमें से कई सब्जेक्ट के बारे में मोरारिबापू को पता ही नहीं था! आई एक्सेप्ट। मैं कुबूल कर रहा हूं कि मुझे लाओत्सू का नाम तक पता नहीं था। क्योंकि देहात में जन्मे। जनम तारीख तक का कोई निर्णय नहीं! मेरी असली जनम तारीख का निर्णय नहीं! ये तो देहात में जिस तारीख को मुझे स्कूल में भरती किया, लिखवा दिया कि जनम तारीख भी ये है। पचीस सितंबर मेरा जनमदिन नहीं है। पूरी दुनिया में चल रही है पचीस सितंबर! अब मैं ओशो की नकल में नहीं कह सकता कि मोरारिबापू नेवर बोर्न! यहां सब अजर-अमर है? हां, अकेले ओशो है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

●

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
- योगेश्वर श्रीकृष्ण।

तो जनम तक का कोई ठिकाना नहीं है यार! ये तो मेरी माँ ने मुझे कहा, मैंने मेरी माँ को पूछा, माँ ये मेरा जनमदिन पचीस सितंबर है? तो बोले, नहीं बेटा! ये तो तेरे पिताजी गए थे तो उसने लिखवा दी होगी। मेरी माँ को तारीख में ख़बर नहीं पड़ती थी कि तारीख क्या चीज़ है? तो मैंने पूछा मेरे लिए तो बता दे, मेरी जनमतारीख क्या है? तो कहा, बेटा! तेरा जनम हुआ वो रात्रि का समय था और वो महाशिवरात्रि थी। तो मेरे कहने का मतलब आप के सामने ये रहा जहां से शुभ मिला और इसमें शरमाने की जरूरत क्या है? ओशो से बात मिली; तो मुझे पता नहीं था कि लाओत्सू कौन? कबीर का पता; बुद्ध का पता; महावीर का पता; सुकरात तक का पता। खलिल जिब्रान को थोड़ा पढ़ा तो उसका पता; उमर खय्याम का पता; जो-जो भारतीय संत है, मनीषी है इन सब का पता लेकिन लाओत्सू और जो-जो मुझे ख़बर ही नहीं कि ये कौन आदमी है? और कई लोगों ये कुबूल नहीं करते और मैं कुबूल करता हूं।

तो बाप! मैंने मेरी आंखों से मूल्यांकन किया है। आज मेरी आंख सत्तर साल की है। मैंने बीस साल की मेरी आंख थी तब जो मूल्यांकन किया है वो करना चाहता हूं कि ओशो का पिंड मुझे पांच तत्त्वों से बना हुआ दिखा। एक, तर्क। लेकिन गज़ब का था साहब! गज़ब का! लेकिन केवल रूखा-सूखा लोजिक नहीं था। बाकी जैसे दक्षेशभाई ने कहा कि वो कोई विनोद में एक टुचका कह दे उसके पीछे कितना ये मैंने भी सुना। मैं पीछे क्यों रहूं? एक विदेश की हिरोइन। विदेश की एक महिला, उसने आठ बार शादी की। फ़िर नौंवी बार शादी करने गई तो जो पादरी था वो शादी के मंत्र खोजने के लिए किताब खोलने लगा। देर हो रही थी तो उसने कहा, पेइज नं थर्टी फोर! तो मेरे कहने का मतलब तर्क था, जो उसका लोजिक था, गज़ब का था, साहब! गज़ब का था! और उसको केवल तार्किक कहना ओशो का अपमान है। तर्क के साथ दूसरे उसके पिंड में मोरारिबापू ने जो देखा वो था तत्त्व। ये आदमी तत्त्व को पकड़ता था। तर्क, तत्त्व और तीसरा लम्हा, मोमेन्ट, पल। अथवा तो तक चुक न जाना वो। तक यानी जो मोमेन्ट है, जो पल में है। पल में जीओ। गंगासती हमारे समढियाळानी, हमारे देहात की एक जागी हुई महिला। वो अपनी पानबाई से कहती है। शायद उसकी चेतना राजी होगी। उसने एक भजन लिखा है, गाया है पानबाई के सामने। एक लीटी गाऊं?

शीलवंत साधुने वारे वारे नमीए पानबाई,
जेना बदले नहीं व्रतमान रे...

गंगासती कहती है कि ऐसे शीलवंत सद्गुरु को एक बार नहीं, बार-बार प्रणाम करो। कौन शीलवंत साधु कि जिसका व्रतमान न बदले। शब्द तो 'व्रतमान' है लेकिन मेरी चेतना ने गंगासती से इजाज़त ली कि माँ, मैं मेरे लिए 'बदले नहीं व्रतमान' के बदले में ये गाऊं कि 'जिसका बदले नहीं वर्तमान।' जो कायम वर्तमान में जिए, पल में जीना। तक को साध लेना। इस आदमी (ओशो) जिस समय वो था शरीर से, अब दूसरे रूप में है; ये तकसाधु नहीं था। गलत अर्थ मत करना। तकसाधु नहीं था। तक मानी मोमेन्ट में जीना, वर्तमान में जीना। अधिकांश अनुसंधान नहीं, भविष्य की चिंता नहीं। उत्सव मनाओ, गाओ, प्रसन्न रहो। मुझे शंकराचार्य याद आते हैं। जगद्गुरु आदि शंकर ने कहा कि परमात्मा का दरवाजा क्या है? परमात्मा के पास पहुंचने का मूल गेइट क्या है? तो कहे, 'प्रसन्न चित्ते परमात्मदर्शनम्।' जिसका चित्त आठों प्रहर प्रसन्न रहता है वो परमात्मा का द्वार खोल रहा है दूसरों के लिए भी।

हम कथा में गवाते हैं। मैं अपने ढ़ंग से कथा गाता हूं तो धार्मिक जगत तकलीफ़ लेती है कि बापू सब को उकसाते हैं! ऐसा होता है! धर्म तो मानो गंभीर, सिरीयस! तू व्यासपीठ उपर आम गावा आव्यो छे के को'क बेसणामां बेसवा आव्यो छे? आ बेसणुं नथी। सुरेश दलाल तो कहेता के घणां लोको एवा होय छे के ऊठे त्यारे ऊठमणुं, बेसे त्यारे बेसणुं! धार्मिक माणस आवो होय? नहीं। भगवान राम जब भी बोले, मुस्कुराकर बोलते हैं। शिव जब भी बोले, मुस्कुराकर बोलते हैं। मेरा याज्ञवल्क्य ऋषि बोलता है तो मुस्कुराकर बोलता है। मुस्कुराना चाहिए। और धर्म ने गंभीर कर दिया! साहब! तक यानी पल। पल एन्जोय करो। तर्क, तत्त्व, पल-मोमेन्ट-तक और मुझे कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं ओशो का पिंड तप से बना है। तो लोगों को यही लगता था कि इतनी गाडियां में घूम रहे! और तुमने यही ओशो दिखाई दिया? मैं हमारे आदरणीय सत्यवेदांतजी के साथ आश्रम में गया और वो मुझे ओशो का कमरा, उसकी लाइब्रेरी दिखाई। और जहां वो प्रवचन करते थे; वहां तो मैंने कहा कि मैं एक बार सुनने भी गया था सालों पहले। तो उसका जो रहना उसका विश्राम कक्ष था वहीं से प्रवचन स्थल में आने में कितना समय? फ़िर भी वो कितनी बड़ी गाड़ी में बैठते थे और यहां जैसे दरवाजा खोला, बैठे तब तक तो दूसरी बार खोलना पड़ता था। आप को यह नहीं लगता कि बुद्धपुरुष का इसके पीछे कोई संकेत है? मूढ़ आदमी गूढ़ वस्तु नहीं समझ पाता। ये तप था। और जानते हुए दुनियाभर की आलोचना को सहन करना इससे बढ़िया तप ओर है क्या? 'सत्येन लभ्येत् तपसा एषः आत्मा।'-उपनिषद।

मैं स्वर्गस्थ हरीन्द्रभाई दवे को याद करूं। ओशो के बहुत चाहक हरीन्द्र दवेसाहब। उसको जब पूछा कि आप इतने बड़े संपादक, इतने बड़े कवि; इतने बड़े विवेचक, सारस्वत। और ओशो के पीछे आप को इतना लगाव? मांजरा क्या है? उसने कहा कि ओशो के दो रूप है। एक उसका जो हमें दिखाई देता है; और दूसरा उसका विचाररूप। मैं ओशो के विचाररूप को पकड़कर उसके पीछे भाग रहा हूं। वो किस गाड़ी में बैठता है? वो क्या था? वो क्या करता है? वो कहां क्या बोलता है? वो कैसे रहता है? इसके साथ मुझे क्या लेनादेन? और सत्यवेदांतजी को अच्छा भी नहीं लगेगा। लेकिन महुवा में मैं जहां रहता था। अब तो अपने गांव चला गया। वहां मेरा घर। आप आये। ये आप की शालीनता थी कि आप नीचे बैठ गये। मैं झूले पर बैठा था। ऐसे ही सायंकाल को बात चल रही थी। उसको भी बहुत साल हो गई। कबीर के बारे में आप बोलने आये थे। तब एक भाई हमारे मुंबई के बहुत बोलते थे; बहुत ऐसे प्रश्न करते थे। वो भी ओशो के प्रेमी ही थे लेकिन अपने ढ़ंग से। तो सत्यवेदांतजी से पूछा कि ये तुम्हारा गुरु, तुम्हारा सद्गुरु जो है वो ऐसा करता है, ये करता है; उसकी आलोचना होती है, ये होता है। आप को अपने सद्गुरु के बारे में क्या कहना है? मैं बहुत एकाग्र हो गया कि ये अधिकारी व्यक्ति क्या बोलेगा अपने गुरु के बारे में? वो मुझे जानना था। सत्यवेदांतजी ने उस समय कहा कि भाईसाहब! मेरे गुरु ने दूसरों के साथ क्या किया, मुझे कोई लेना-देना नहीं। मेरे साथ क्या किया? मुझे सब से उपर बैठा दिया है। मुझे ये देखना है। मैं औरों में क्यों जाऊं? और आलोचना सहन करना इससे बड़ा तप क्या है? किसकी आलोचना नहीं होती?

सीताने घोर जंगलमां अमे पुत्रो जणाव्या छे।
कृष्णने भीलना बाणे अमे पोते हणाव्या छे।
कलम धूजे कथा लखता अमारी पापपोथीनी।

अने एक फिलमनी पंक्ति गाऊं?

कुछ तो लोग कहेंगे...

मुझे इससे आगे का टुकड़ा ज्यादा अच्छा लगता है।

लोगों का काम है कहना...

॥ मानस-भुवनेश्वर ॥ :७३:

लोगों का तो यही अर्थ, धर्म था।

छोड़ो बेकार की बातें कहीं बीत न जाये रैना...

और यहां तो जानते हुए अंदर से असंगतता को बरकरार रखते हुए भी समाज की आलोचना को मुस्कुराकर सहन करना ये तप; ओशो के पिंड में चौथी वस्तु थी तप। उसकी घड़ी में हीरा, उसकी किंमत करने जाओगे तो उसके तप का अंदाज़ा नहीं कर पाओगे! लेकिन फ़िर भी एक फिलम की पंक्ति याद आती है कि ये भोग भी एक तपस्या है-

ये भोग भी एक तपस्या है,
तुम त्याग के मारे क्या जानो?

क्या पंक्ति है! अद्‌भुत! परम भोग बड़ी तपस्या है। ओशो ने सामान्य स्तर के भोगों की बातें नहीं कि है साहब! परम भोग; परम को भोगो। शुरूआत पहली सीढ़ी से करनी होती है ये ओर बात है। लेकिन परम भोग ये तपस्या। और पांचवें विग्रह में जो मैंने देखा वो था तंत्र। साहब! इतने तंत्रसाधना के प्रकार किसी बुद्धपुरुष ने दिये? ओशो ने इतना खुलकर हमारे सामने रखा है कि गोरख की तंत्रसाधना, शिव तंत्रसाधना आदि तंत्र। यद्यपि ओशो में तंत्र की भीषणता नहीं थी। लेकिन जानकारी तो गज़ब थी। जो किसीको इस साधना से परम को पाना है उसी मारग से उनके लिए सभी भेद खोल दिये थे इस आदमी ने।

तो इन पांच प्रकार से ओशो का पिंड बना है ऐसा मुझे लगता है। अब आप कहेंगे कि आप ने ये 'त' क्यों लगा रखा है? मैंने पहले ही कहा कि ये मेरे तलगाजरडी अवलोकन है। और तलगाजरडा में पहले 'त' आता है। मारे आम कमळनो 'क' अने खटारानो 'ख'ने बदलवानुं आवे ने तो 'त' आवे त्यां तलगाजरडानो 'त' करी नाखुं! आपणुं पोतानुं ज सारुं ने? अमारे त्रापजकर कविदादाए दोहो लख्यो के-

कबूतर ऊड्युं कच्छथी, मुंबई आव्युं जोई,
एने वहालुं न लाग्युं कोई वागड जेवुं विठ्ठला।

अपनापन जो है।

फ़र्क इतना ही है सैयाद फ़कस और आशियाना में,
उसने तुझे बनाया है, ये मैंने बनाया है।

ये जो फ़र्क है। तो पांच प्रकार से बना एक बुद्धपुरुष वो ओशो है, ये मैंने माना है। कोई माने या न माने। बाकी आख़िर में इतना ही कहूं कि इस आदमी ने आचार्य रजनीश के रूप में परिव्राजक होकर सब को शिक्षा दी। पूणे में बैठकर भगवान रजनीश के रूप में उसने दीक्षा दी। और साहब! ओशो के रूप में पूरे विश्व को प्रेम की भिक्षा दी। यही मोरारिबापू का ओशो। और साहब, दुनिया में कई पीठ होती है। देहातों में रहे लोग जानते हैं कि एक खडपीठ होती है। एक दाणापीठ होती है। साहित्यकारों को जो एक अवोर्ड मिलता है वो ज्ञानपीठ है। एक है व्यासपीठ। यही पीठों में एक नई पीठ जिसको ओशोपीठ कहते हैं। और मैं ओशोप्रेमीओं से चाहूंगा कि जिसने ओशो को बिलकुल समर्पित भाव से सेया है उसको चाहिए जहां-जहां अवसर मिले वहां ओशोपीठ पर बैठकर ओशो की कथा और ओशो के विचारों को जगत को प्रेरित करे। और जब कोई तीन दिन की बात ओशो पर करे तो उस पीठ का नाम व्यासपीठ देने की जरूरत नहीं है; ओशोपीठ दीजिएगा कि ये ओशोपीठ है।

दूसरी एक प्रसन्नता मैं व्यक्त करना चाहता हूं जाते-जाते। मुझे दक्षेशभाई ने कहा है जब मैं आया कि बापू, ओशो के नाम पर एक युनिवर्सिटी होनी चाहिए। इस विचार को तलगाजरडा के बावा के नाते बहुत समर्थन कर रहा हूं कि ओशो के नाम की एक युनिवर्सिटी होनी चाहिए। और ये ओशोपीठ अथवा तो ओशो युनिवर्सिटी आप जाने उसके बारे में क्या करना? लेकिन तलगाजरडा में श्री हनुमानजी की जो मूर्ति प्रस्थापित है उस हनुमानजी से प्रसादी के रूप में ओशोपीठ अथवा ओशो युनिवर्सिटी जो हो; ओशोपीठ से शुरू हुआ है तो उसमें एक लाख का तुलसीपत्र आप कुबूल करे। आप उसको ग्रहण करे। बहुत-बहुत शुक्रिया।

(वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सुरत में ओशो चेर के उद्‌घाटन समारोह के अवसर पर प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक २२-१-२०१७)

सांध्य-प्रस्तुति

कीर्तिदान गढवी

ओसमान मीर

मायाभाई आहीर

शोभित देसाई

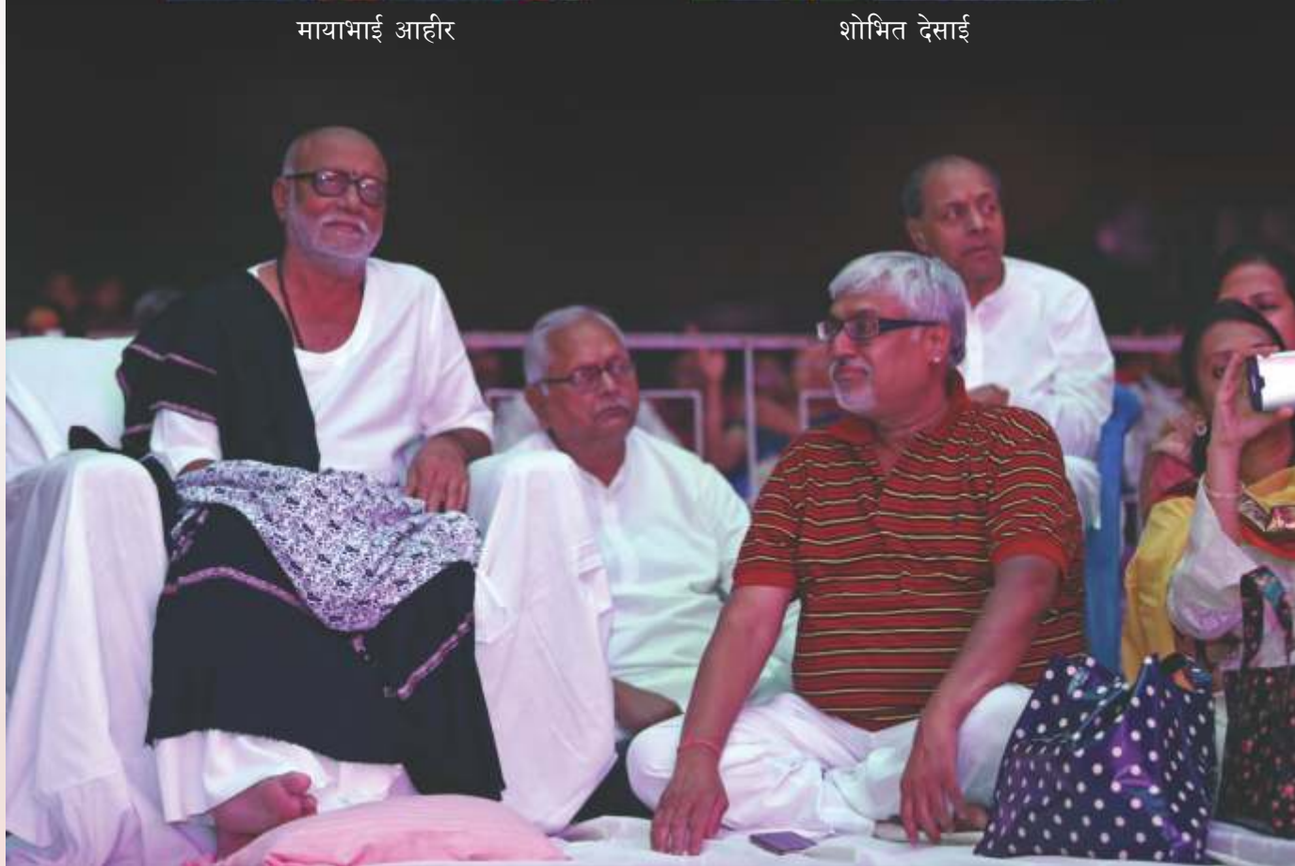

॥ जय सीयाराम ॥